योगविद्या

वर्ष 6 अंक 2
फरवरी 2017
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : योग चक्र 2016

अन्दर के रंगीन फोटो 1: योग चक्र 2016, मुंगेर;
2-3: 'स्वयं को जानो' योगोत्सव, पंजाब;
4: स्वर्ण मंदिर, अमृतसर, पंजाब;

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥5.27॥

भ्रूमध्य पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करने से तुम्हारे नेत्र स्थिर और निश्चल हो जाएँगे। साथ ही तुम्हें अपनी श्वास को लययुक्त बनाना चाहिए। जब श्वास एक लय के अनुसार चलती है तो मन भी शांत और स्थिर हो जाता है। तब तुम्हारे सभी कोषों में सामंजस्य और संतुलन आ जाता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 6 अंक 2 • फरवरी 2017
(प्रकाशन का 55 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 राजयोग मीमांसा
9 राजयोग का सार
19 मन के आयाम
31 मजबूत मन
33 आसन–राजयोग के आलोक में
38 सत्यम् वाणी
46 राजयोग प्रशिक्षण मॉड्यूल 1
49 प्रत्याहार और धारणा
54 धारणा में अध्यवसाय

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

राजयोग मीमांसा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सभी विचारों और विक्षेपों पर विजय प्राप्त कर लेना ही राजयोग का लक्ष्य है। यह सभी योगों में श्रेष्ठ है, इसीलिए इसे राजयोग कहा जाता है। राजयोग मन की बहिर्मुखी वृत्तियों को मोड़ना और आगे जाकर आनन्दमय शुद्धावस्था की प्राप्ति करना सिखलाता है। यह हमलोगों की आसुरी प्रकृति को बदलने और दिव्य स्वरूप की प्राप्ति के नियम सिखलाता है।

इससे सभी प्रकार के दु:खों, कष्टों और क्लेशों का निवारण किया जा सकता है। योग के अभ्यास से मनुष्य जन्म-मरण के चक्कर से मुक्ति पा लेता है। योग से सिद्धि और मुक्ति, दोनों प्राप्त की जा सकती है। योगी बनो और अमरत्व का अनुभव करो। इसीलिए तुम गीता में पाते हो, *'तस्मात् योगी भवार्जुन।'*

मानसिक वृत्तियाँ और उनका शमन

कुत्तों और घोड़ों में भी मन होता है, लेकिन उनमें न तो विवेक है, न बुद्धि और न ही विचार-शक्ति। इसीलिए उन प्राणियों के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त करना सम्भव नहीं। अज्ञानी लोग अपना सम्बन्ध शरीर, मन और मन की वृत्तियों से रखते हैं। मन और शरीर केवल उपादान कारण हैं। यदि तुम मन और मन की वृत्तियों के साथ एक होकर काम करोगे तो दु:ख और कष्ट ही पाओगे। सम्पूर्ण जगत् का निर्माण मन की वृत्तियों से ही हुआ है। यदि विचारों और उद्वेगों को शांत कर दिया जाय तो कैवल्यावस्था या उच्चतम आनन्द और शान्ति की अवस्था प्राप्त की जा सकती है।

जिस तरह किसी सरोवर की ऊपरी सतह की लहरों की चंचलता शान्त हो जाने पर सरोवर की निचली सतह भी देखी जा सकती है, उसी प्रकार यदि मानसिक वृत्तियाँ शान्त हो जाएँ तो तुम अपने स्वरूप की यथार्थता को देख सकते हो। जिस तरह साबुन शरीर को साफ करता है, उसी प्रकार मन्त्र-जप, भगवद्-ध्यान, नाम-

कीर्तन और यम-नियम के अभ्यास तुम्हारे मन और उसमें रहने वाली विकृत-वृत्तियों को निर्मल करने में सहायक बनेंगे। जिस प्रकार अन्न से इस शरीर का पोषण होता है, उसी प्रकार मन तथा आत्मा के लिए आध्यात्मिक भोजन आवश्यक है।

जब तुम्हें व्यापार में घाटा होता है, या इकलौते पुत्र की अकाल मृत्यु से दु:खी हो जाते हो, अथवा कोई अन्य दु:खदायी समाचार सुनते हो तो तुम पौष्टिक भोजन करने पर भी शारीरिक क्षीणता को प्राप्त होते हो। इससे क्या सिद्ध होता है? यही न कि मन का अस्तित्व है और उसके लिए एक अचूक औषधि है—आनन्द।

जब कोई स्त्री अपनी पुत्री के विवाह के प्रबन्ध में अति-व्यस्त रहती है तो भोजन तक करना भूल जाती है। किन्तु भोजन न करने पर भी वह सदा प्रसन्नचित्त रहती है। भूखे रहने पर भी उसका हृदय आनन्द से उछलता रहता है। इसका क्या कारण है? प्रसन्नता और आनन्द, ये दो प्रभावशाली औषधियाँ उसके मन पर काम कर रही हैं। यद्यपि वह भोजन नहीं करती है तो भी आन्तरिक मानसिक शक्ति और आनन्द का अनुभव करती है।

अधिकार प्राप्त करने से मन की शान्ति भंग होती है। जिनको अधिकार प्राप्त है, वे सदा उनका दुरुपयोग करते हैं। वे दूसरों पर हुक्म, अधिकार और शासन करना चाहते हैं। पद और अधिकार को त्यागना अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि राजयोग दर्शन मनुष्य को आरम्भ में यम-नियम के अभ्यास में दीक्षित करता है। जो यम-नियम के अभ्यास में लगा हुआ है, वह अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करेगा, वह दूसरों पर हुक्म नहीं चलाएगा, वह विनम्र होगा, उसमें सेवा और आत्म-त्याग की लगन होगी।

जीवन का एक कार्यक्रम बना लो। आध्यात्मिक नियमों का एक नक्शा खींच लो। नियमितता और क्रमिक रीति से उसका अनुसरण करो। खूब होशियारी और लगन के साथ अपने को उसमें दत्तचित्त कर दो। अपने मूल्यवान् क्षण व्यर्थ में नष्ट न करो। जीवन क्षणभंगुर है। समय थोड़ा है। कल शायद नहीं आयेगा। या तो अभी या कभी नहीं। दृढ़ निश्चय के साथ खड़े हो जाओ—'मैं इसी क्षण से योगी बनूँगा।' कमर कस लो। दृढ़ और निरन्तर योग साधना करो। ज्ञानदेव, गोरखनाथ, सदाशिव ब्रह्म और अन्य योगियों के पदचिह्नों पर चलो।

चित्त मानसिक पदार्थ, वस्तु या विषय है। यह विभिन्न प्रकार के रूपों और आकृतियों को धारण करता है। इन वृत्तियों में परिवर्तन होते रहते हैं। यदि चित्त एक आम के सम्बन्ध में सोचता है तो आम की वृत्ति तुरन्त ही चित्त में प्रतिबिम्बित हो जाती है। जब यह वृत्ति शान्त हो जाती है, तब दूसरी वृत्ति का उदय होता है और चित्त उस वृत्ति से तदाकार हो जाता है। जब यह घृणा और द्वेषादि की बातें सोचेगा तो स्वयं घृणा और द्वेषादि का स्वरूप बन जायेगा। ये वृत्तियाँ ही मन की अशान्ति का कारण बनती हैं।

संस्कारों और वासनाओं के कारण चित्त में वृत्तियाँ उठती हैं। यदि वासनाओं और इच्छाओं का मूलोच्छेदन कर दिया जाय तो वृत्तियाँ अपने आप ही शान्त हो जाएँगी।

ध्यान और समाधि

जब एक वृत्ति शान्त होती है तब अवचेतन मन पर एक निश्चित प्रभाव अंकित कर जाती है, जिसे संस्कार या आन्तरिक प्रभाव कहा जाता है। सभी संस्कारों की समष्टि को संचित कर्म भी कहते हैं। जब मनुष्य इस भौतिक देह को त्यागता है, तब अपने साथ सूक्ष्म शरीर और संचित कर्म को भी ढोकर ले जाता है। यह संचित कर्म असम्प्रज्ञात-समाधि द्वारा प्राप्त हुए उच्चतम ज्ञान द्वारा बिल्कुल भस्म कर दिया जाता है।

केवल हठयोग के अभ्यास से पूर्ण योग की प्राप्ति नहीं हो सकती। नेति, धौति, बस्ति, नौली, आसन, मुद्रा और बन्ध के अभ्यास से शरीर स्वस्थ, स्फूर्त और अपने वश में रहता है, पर यही योग के समस्त अंग नहीं हैं। ध्यान का अभ्यास भी करना चाहिए।

वह स्थान जहाँ तुम्हें मन की एकाग्रता प्राप्त हो सकती है, ध्यान के अभ्यास के लिए उचित है। मन की एकाग्रता का अभ्यास करते हुए तुम्हें सावधानी से मन की अस्त-व्यस्त शक्तियों को एकत्र और केन्द्रित करना होगा। चित्त में वृत्तियाँ जागती

रहेंगी। तुम्हें उन वृत्तियों को सदुपायों से शान्त करना होगा। जब सभी लहरें शान्त हो जाएँगी, तभी मन शान्त, शुद्ध और पवित्र हो सकेगा। उस अवस्था में ही योगी को शान्ति और आनन्द मिलता है। सुख अपने अन्दर है, उसे प्राप्त करने के लिए अपने मन को वश में करना होगा; नाम, यश, प्रतिष्ठा, धन-पदवी अथवा स्त्री-पुत्रों द्वारा सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए। यदि मन केन्द्र-बिन्दु से इधर-उधर विचलने लगे तो प्रयत्न कर, बार-बार उसे वापस लाने का अथक परिश्रम किया जाय। यही अभ्यास या साधना है। चित्त के बौद्धिक आवेगों को अभ्यास के द्वारा और मन के आवेगों को वैराग्य के द्वारा रोको। ऐसा करने पर ही मन शान्त हो सकेगा, और तभी तुम आसानी से इसे अपने वश में कर सकोगे।

मन की शुद्धता से ही योग की पूर्णता प्राप्त होती है। दूसरों के प्रति अपने व्यवहार को शुद्ध रखो। सब के प्रति हमदर्द बनो। पापियों से घृणा न करो। सभी प्राणियों के प्रति दया का व्यवहार करो। प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष विनम्र बनो। बड़ों के प्रति सज्जनता से व्यवहार करने का अभ्यास करो। मोक्ष की प्राप्ति के लिए मन में उत्कट अभिलाषा और तीव्र वैराग्य, व्यवहार में कुशलता और सत्यता होनी चाहिए। सच्चे और चेष्टावान् बनो।

इन्द्रिय-दमन, गुरु-भक्ति और सतत् अभ्यास से योग में सफलता मिल जाती है। साधक को सदा धैर्य से काम लेना चाहिए। बहुधा ऐसा देखा गया है कि जो निवृत्ति का मार्ग अपनाते हैं, वे कुछ दिनों के बाद आलसी बन जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे मानसिक शक्ति का उपयोग करना नहीं जानते, गुरु के उपदेशों के अनुसार नहीं चलते और न किसी प्रकार का दैनिक कार्यक्रम ही रखते हैं। वैराग्य होने पर भी उन्हें आध्यात्मिक पथ का कोई अनुभव नहीं है। अत: वे काफी समय बीतने पर भी किसी प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर पाते हैं।

यदि योग का निरन्तर-ध्यानपरायण विद्यार्थी दु:खी रहता है तो समझना चाहिए कि अवश्य उसके ध्यान में कोई त्रुटि होगी। यदि वह निराश और निर्बल है तो निश्चय ही कहीं पर गलती है, उसका सुधार करना चाहिए। ध्यान के अभ्यास से मनुष्य सशक्त, सुखी और स्वस्थ बनता है। साधक स्वयं दु:खी हो तो गृहस्थ को सुखी, समृद्ध और शक्तिशाली कैसे बना सकेगा? गृहस्थ लोग शान्ति और आनन्द के लिए महात्माओं की सन्निधि खोजते हैं। याद रखो कि सदा मुस्कुराता हुआ चेहरा सच्ची आध्यात्मिकता और आन्तरिक दिव्य-जीवन का जीता-जागता प्रमाण है।

जिस प्रकार छत पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी रहती हैं, उसी प्रकार सवितर्क समाधि, निर्विचार समाधि और अन्य कई समाधियाँ योग की सीढ़ियाँ हैं। आनन्द की अन्तिम अवस्था, असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करने से पूर्व इन समाधियों से सम्पन्न हो जाना होगा। कुछ महात्मा ऐसे हैं, जो जन्म से ही समाधि की चरम सीमा

तक पहुँचे हुए हैं। वे सिद्ध कहलाते हैं। उन्होंने अपने पूर्व जन्मों में घोर साधना कर इसके संस्कारों की प्राप्ति की होगी।

योग की प्रत्येक अवस्था का अनुभव हो जाना चाहिए। साहसपूर्वक, धीरे-धीरे, सँभल-सँभल कर, आनन्दचित्त हो, अपना पग बढ़ाते जाना चाहिए। जब तक योग के प्राथमिक अंगों का अभ्यास और उनकी सिद्धि प्राप्त न कर लो, तब तक योग के उच्च अभ्यासों को हाथ भी न लगाओ। ध्यान और समाधि का यह राजमार्ग है।

इस जगत् का समस्त भौतिक ज्ञान आध्यात्मिक-ज्ञान की तुलना में कुछ भी नहीं है। सांसारिक ज्ञान असत्य और मिथ्या है। आध्यात्मिक साधक जब 'धर्ममेघ समाधि' की प्राप्ति करता है तब उसके गिरने का भय नहीं। उसके लिए न तो दु:ख हैं और न ही दोष। यह अवस्था तभी प्राप्त की जा सकती है, जब योगी ने सभी सांसारिक अधिकारों को तिलांजलि दे दी हो। जब धर्ममेघ समाधि का अवतरण होता है, तब योगी शान्ति, पवित्रता, सन्तोष और दिव्य आनन्द प्राप्त करता है।

जिस प्रकार आग सूखे पत्तों के ढेर को पूर्णत: जला देती है, उसी प्रकार योग भी सभी कर्मों को जला देता है। योगी कैवल्य की प्राप्ति कर लेता है। समाधि द्वारा उसे 'सहज ज्ञान' होता है। एक ही क्षण में यथार्थ-ज्ञान उसके अन्दर प्रकाशित हो जाता है। ऐसे सिद्ध के लिए भूत और भविष्य का क्या अस्तित्व? केवल वर्तमान की स्थिति रह जाती है।

जिसका श्रुति और शास्त्रों में दृढ़ विश्वास है, जिसने सदाचार का पालन किया है, गुरु-सेवा में जो निरंतर तत्पर है, जिसने साधुओं के संग अपना अमूल्य समय बिताया है, जिसमें तीव्र वैराग्य है, और अन्तत: जो काम, क्रोध, मोह, लोभ और मिथ्या-गर्व से मुक्त है, वह सहजता से संसार को पार और समाधि को प्राप्त कर लेता है।

राजयोग का सार

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

राजयोग एक ऐसी अपूर्व विद्या है, जिसमें पुरुष और प्रकृति के संयोग के वियोग को ही योग बतलाया है। वैसे योग का अर्थ जोड़ना अथवा मिलाना होता है, परन्तु इसका सच्चा अर्थ है समाधि, जिस स्थिति में अविद्या द्वारा उत्पन्न पुरुष और प्रकृति की संयोग-ग्रन्थि विलीन हो जाती है।

योग के इस सच्चे अर्थ, समाधि को प्राप्त करने के लिए गुरु को शिष्य का सतर्कता से चुनाव कर उसे नियंत्रण-पूर्वक शिक्षा देनी पड़ती है। यह पर्याप्त नहीं कि शिक्षा दे दी, बल्कि गुरु को समाधि का अनुशासन शिष्य को देना पड़ता है।

मन, बुद्धि और अहंकार, जिसे मैं चित्त कहूँगा, अन्त:करण के भी नाम से जाना जाता है और इस अन्त:करण के कार्यों को वृत्ति कहा जाता है। ये वृत्तियाँ जो सदैव चंचल रहती हैं, समाधि में निरुद्ध हो जाती हैं, जिसे योगाभ्यास के द्वारा प्राप्त किया जाता है।

चित्त की पाँच अवस्थाएँ हैं–क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। क्षिप्त अवस्था में चित्त-वृत्तियाँ विषयाकार होकर चंचल और उन्मत्त रहती हैं। मूढ़ अवस्था में निद्रा, आलस्य और प्रमाद के प्रभाव से मन्द रहती हैं। विक्षिप्त अवस्था में चित्त-वृत्तियाँ कभी विषयाकार रहती हैं और कभी स्थिर। एकाग्र अवस्था में चित्त-वृत्तियाँ सब तरफ से सिमट कर केवल एक ओर लग जाती हैं। निरुद्ध अवस्था में चित्त की वृत्तियाँ विषयों के अभाव में शान्त हो जाती हैं और बिना आधार के रहती हैं।

योगाभ्यास का आरम्भ, यदि सच कहा जाय तो एकाग्र अवस्था से आरम्भ होता है, जिसमें चंचल और अस्थिर मन को विभिन्न विषयों में भटकने से रोककर एक ही ओर लगने का अभ्यास कराया जाता है। इसके पूर्व की तीनों अवस्थाएँ संसारी जीवों की होती हैं, जिन्हें कर्म और भक्ति के अलावा अन्य किसी मार्ग में अधिकार नहीं। अन्तिम अवस्था वृत्तियों के निरोध की है, जिसका फल असम्प्रज्ञात समाधि और बाद में धर्ममेघ समाधि है।

चित्त-वृत्तियाँ

अन्त:करण की ये वृत्तियाँ पाँच होती हैं, अर्थात चित्त पाँच प्रकार से वृत्तिमय और क्रियाशील होता है। अन्त:करण के कार्य ही चित्तवृत्तियाँ हैं और वे जब चित्त के लिए सुखदायी होती हैं तो 'अक्लिष्ट' कहलाती हैं, और जब दु:खदायी होती हैं तो 'क्लिष्ट' कहलाती हैं।

अन्त:करण यथार्थ-ज्ञान, विपरीत-ज्ञान, काल्पनिक-ज्ञान, अज्ञान और स्मृत-ज्ञान के द्वारा जिन्हें क्रमश: प्रमाण-वृत्ति, विपर्यय-वृत्ति, विकल्प-वृत्ति, निद्रा-वृत्ति तथा स्मृति-वृत्ति के नाम से जाना जाता है, एक-एक प्रकार के वृत्ति-सारूप्य को प्राप्त करता है, जो उसके धर्म बन जाते हैं।

जब अन्त:करण किसी विषय को इन्द्रियों के माध्यम से प्रत्यक्ष में जानता है, तब उस समय उसकी प्रत्यक्ष-ज्ञान-प्रमाण-वृत्ति रहती है। जब अन्त:करण किसी विषय को पूर्ववत् अनुमान, शेषवत् अनुमान अथवा सामान्यतोदृष्ट अनुमान के सम्बन्ध से जानता है, तब उस समय उसकी अनुमान-प्रमाण-वृत्ति रहती है। जब अन्त:करण किसी विषय को आगमों के माध्यम से, जो आप्त पुरुषों के वचनों के रूप में अध्यात्म-शास्त्रों की परम्परा में चले आते हैं, जानता है तब उस समय उसकी आगम-प्रमाण-वृत्ति रहती है।

जब अन्त:करण अविद्या के वश में किसी विषय को उसके विपरीत स्वरूप में जानता है, तब उसकी मिथ्या प्रतीति को विपर्यय-वृत्ति कहते हैं। वस्तु जब अपने विपरीत स्वभाव में अनुभूतिगम्य होती है, तब उसे विपर्यय-वृत्ति का प्रभाव जानना चाहिए।

किसी भी वस्तु का ज्ञान उसके नाम अथवा रूप से होता है। किन्तु कभी रूप के न रहने पर भी नाम से ही अन्त:करण ज्ञान को पा लेता है। अन्त:करण के द्वारा प्राप्त ऐसे ही ज्ञान को चित्त की विकल्प-वृत्ति कहा गया है। अर्थात् जब वस्तु के अभाव में भी चित्त की वृत्तियाँ केवल नाम को आधार बना कर वृत्ति-सारूप्य को प्राप्त करती हैं, उस समय विकल्प-वृत्ति ही सक्रिय रहती है।

जाग्रत अवस्था में चित्त इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करता है और स्वप्नावस्था में इन्द्रियों के सो जाने पर वह स्वयं अपने अनुभवों का दर्शन करता है। किन्तु जब निद्रा आ जाती है, तब अन्त:करण की यह वृत्ति भी लुप्त हो जाती है और वह केवल अभाव की अनुभूति कर सक्रिय रहता है। अभाव की अनुभूति को ही निद्रा-वृत्ति कहते हैं, अर्थात निद्रा चित्त की अवस्था-विशेष है।

अन्त:करण जिस-जिस भाव को प्राप्त होता है, वह उसकी वृत्ति है और तदनुसार अनुभवों का जन्म होता है, तथा वही अनुभव संस्कार बनकर चित्तभूमि

में ग्रथित हो जाते हैं, और जब-जब चित्त उन संस्कारों व अनुभवों से सारूप्य स्थापित करता है, तब-तब उसकी वृत्ति स्मृति रूप रहती है। अन्त:करण की यह स्मृति वृत्ति चित्त में प्रतिदिन अनेकों बार सक्रिय रहती है और हमारा जीवन पुराने अनुभवों के स्मरण से इतना प्रभावित रहता है कि जीवन का पूरा राग-द्वेष इसी वृत्ति का परिणाम है।

यद्यपि चित्त नवीन ज्ञान से भी प्रभावों को प्राप्त होता है जो इन्द्रियों के माध्यम से उसे प्राप्त होते रहते हैं, किन्तु उस पर सबसे अधिक प्रभाव स्मृति का ही पड़ता है; अत: चित्त की अन्य वृत्तियों के निरुद्ध हो जाने पर भी कोई लाभ नहीं दिखता, जब तक स्मृति तथा संस्कारों का पूर्णत: निरोध न हो जाय।

साधना की निष्ठा अथवा ध्येय विषय में चित्त के लग जाने से प्रमाण-वृत्ति का, विवेक-बुद्धि से विपर्यय-वृत्ति का, वस्तु के स्वरूप के ज्ञान से विकल्प-वृत्ति का और योगनिद्रा से निद्रा-वृत्ति का निरोध तो जल्दी हो जाता है, परन्तु स्मृति-वृत्ति का निरोध वैराग्य के बिना नहीं हो सकता और स्मृति-वृत्ति के निरोध हुए बिना चित्त समाहित नहीं हो सकता।

पाँच क्लेश

कथित पाँचों वृत्तियाँ दोषयुक्त और निर्दोष होती हैं। चित्त-वृत्तियों के दोषों को अविद्या और उससे उत्पन्न अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश के नाम से जाना जाता है। अर्थात् अविद्या आदि पाँचों दोषों से सारूप्य प्राप्त होने पर चित्त की वृत्तियाँ दोषयुक्त और क्लेश का कारण बनती हैं, और इसी प्रकार इन पाँचों के मुक्त हो जाने पर वे निर्दोष और अपार सुख का उदय करती हैं।

अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, जिन्हें समझाया जायेगा, चाहे प्रसुप्त हों अथवा मंद, विचलित हों अथवा तीव्र, किसी भी अवस्था में उनकी उत्पत्ति अविद्या से ही होती है। अविद्या मूल क्लेश है, तथा अन्य क्लेश उसके परिणाम।

अविद्या क्या है? अनित्य विषयों को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दु:खदायी को सुखदायी और अनात्म वस्तुओं को आत्म-वस्तु समझना, संक्षेप में किसी भी विषय के वास्तविक स्वरूप को न जानकर उसमें उसके विपरीत स्वरूप की प्रतीति करना अविद्या है। राग और द्वेष से प्रभावित होकर चित्त की भूमिका में विषयों की उल्टी जानकारी होती है, यही उल्टी जानकारी अविद्या के नाम से जानी जाती है।

अविद्या भाव-तत्त्व है और इसका स्वभाव ही है सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझ लेना। अविद्या-भाव के कारण ही हम जीवन में दु:ख पाते हैं, हमारा अन्त:करण मिथ्या-ज्ञान और विपरीत-ज्ञान को ग्रहण कर लेता है। सांख्य शास्त्र में इसे अष्टधा 'तम' कहते हैं, क्योंकि अपरा प्रकृति अष्टधा होती है।

अस्मिता है विषय-दर्शन की शक्ति को द्रष्टा की क्रिया समझना। द्रष्टा आत्मा कोई क्रिया नहीं करती। अन्त:करण ही ज्ञानेन्द्रियों से विषय-ज्ञान प्राप्त करता है। किन्तु जीव अन्त:करण के धर्मों को अपने में आरोपित कर अन्त:करण के ही प्रभाव से स्वयं को कर्त्ता मान लेता है। इसी मान्यता को अहंकार याने अस्मिता कहते हैं। इसी मान्यता से जीव अपने में अन्त:करण के धर्मों से उत्पन्न फलाफल का आरोप कर स्वयं को सुखमय और दु:खमय मानता है। सांख्य शास्त्र में इसे अष्टधा 'मोह' करके सूचित किया गया है।

राग और द्वेष भी चित्त की वृत्तियों को क्लिष्ट बना देते हैं। प्राप्त सुख की कामना राग है और प्राप्त दु:ख से अनिच्छा द्वेष। पूर्वानुभूत सुखों का स्मरण कर जब भावना उनके पीछे जाती है तो राग से उत्पन्न क्लेश होते हैं। पूर्वानुभूत दु:खों का स्मरण कर जब भावना में उनके प्रति तिरस्कार जागता है तो द्वेष से उत्पन्न क्लेश होते हैं। सांख्य शास्त्र में राग को 'महामोह' और द्वेष को 'तामिस्र' कहा गया है।

जन्म-जन्मान्तर से प्राप्त हुए मृत्यु के स्मृति-रूप भय से विद्वान् पुरुष भी उतना ही घबड़ाते हैं, जितना एक अबोध बालक अथवा पशु। इसी पूर्वानुभूत मरण-भय की भावना से अभिनिवेश नामक क्लेश की उत्पत्ति होती है, जिससे अन्त:करण सदैव क्षुब्ध रहता है। सांख्य-शास्त्र में इसे 'अन्धतामिस्र' की संज्ञा दी गई है।

इन्हीं पाँचों क्लेशों से चित्त-वृत्तियाँ तीन गुणों को प्राप्त होकर विषय-दर्शन का कारण बनती हैं और जीव को बन्धन में फँसाए रहती हैं। किन्तु जब वे इन पाँचों के फन्दे से मुक्त हो जाती हैं तो आत्मदर्शन का साधन बनती हैं।

वैराग्य और अभ्यास

जो नहीं करना है उसे नहीं करना वैराग्य हुआ, और जो करना है, उसे करना अभ्यास। वैराग्य की विधि निषेधात्मक है और अभ्यास की विधि विध्यात्मक। चित्त की वृत्ति को चलायमान करने वाले विषयों में अरुचि है वैराग्य और चित्त में स्थिरता और शान्ति ले आने वाले साधनों में रुचि है अभ्यास। वैराग्य और अभ्यास—दोनों के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है।

अभ्यास दो प्रकार के होते हैं। उत्तम अधिकारियों के लिए ध्यानात्मक अभ्यास और मन्द साधकों के लिए क्रियात्मक अभ्यास। अभ्यास के आठ अंग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें प्रथम पाँच क्रियात्मक हैं, शेष तीन ध्यानात्मक। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार से क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त वृत्तियों को एकाग्रता में समर्थ बनाया जाता है। धारणादि से एकाग्रता व निरोध की सिद्धि की जाती है।

तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान से जीवन शुद्ध होता है, जिससे चित्त आठों योगों का सुगमता से अभ्यास कर सकता है। ये तीनों क्रियात्मक साधनाएँ हैं।

शरीर, प्राण, इन्द्रिय समूह तथा अन्त:करण को वश में ले आने के उपाय या उपायों को तप कहते हैं, जिससे साधक विक्षेपरहित होकर योग के मार्ग में आरूढ़ हो सके। पुरुष ज्ञान परक शास्त्रों का अध्ययन तथा अपने इष्ट-मंत्र का विधिवत् जप ही स्वाध्याय है। इससे अन्तस् शुद्ध होता है। ईश्वर के स्वरूप के अनुसंधान में मन को पूर्णत: लगा देना ही ईश्वर-प्रणिधान है। इससे समाधि लगती है।

उपरोक्त क्रिया-त्रयी के अभ्यास से चित्त बार-बार समाधि में प्रवृत्त होता है और पाँचों क्लेश निर्बल पड़ जाते हैं। अत: समाधि के अभ्यासी को, अन्य योगों के साथ, क्रिया-त्रयी का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

यम-नियम

अब योग के आठ अंगों में से प्रथम अंग 'यम' की चर्चा की जाय। यम पाँच प्रकार के होते हैं– सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। मन-वचन-कर्म से सत्य का पालन 'सत्य', किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाना 'अहिंसा', चोरी न करना 'अस्तेय', वीर्यरक्षा 'ब्रह्मचर्य', और निर्लोभिता व संग्रह-वृत्ति का अभाव 'अपरिग्रह' है।

पाँच नियम हैं–शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान। बाहरी और भीतरी पवित्रता को 'शौच' तथा पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त वस्तुओं में आनन्द 'सन्तोष' है। तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान के विषय में पहले बतला चुके हैं।

असत्य, हिंसा, व्यभिचार, चोरी, लोभ-संग्रह, अशुचिता, असन्तोष, विलासिता, गप-शप, नास्तिकता की वृत्ति का प्रयोग स्वयं किया जाता है, दूसरों

से करवाया जाता है, और दूसरों को करते देखकर अनुमोदित होता है। ये विरोधी प्रयोग 'वितर्क' के नाम से जाने जाते हैं। ये दोष, लोभ, क्रोध और मोह से किए जाने पर कभी मृदु-रूप में, कभी मध्यम-रूप में और कभी भयंकर-रूप में साधक में प्रवृत्त होते एवं दु:ख और अज्ञान के रूप में अनन्त फल देते हैं।

जब भी उपरोक्त वितर्क यम और नियम के पालन में बाधा पहुँचावें, तब प्रतिपक्षी विचारों की भावना करनी चाहिए और यह विवेक जाग्रत करना चाहिए कि इन वितर्कों का परिणाम अनन्त दु:ख और अज्ञान होता है।

अहिंसा-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से उस योगी की सन्निधि में सभी प्राणी पारस्परिक वैर को भूल जाते हैं। सत्य-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से वह योगी अमोघ वाणी का उपार्जन कर लेता है, जिसके फलस्वरूप उसमें वह शक्ति आ जाती है कि वह क्रियाओं के फल का आश्रय बन जाता है। अस्तेय-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से वह योगी सर्वप्रकार की सम्पत्ति का उपस्थान बन जाता है, अर्थात् सम्पत्ति उसके पास अपने-आप चली आती है। ब्रह्मचर्य-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से योगी में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सामर्थ्य का प्रादुर्भाव होता है। अपरिग्रह-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से योगी को अपने पूर्वापर-जन्मों का ज्ञान हो जाता है।

बाह्य-पवित्रता के अभ्यास से अपने शरीर से विरक्ति और दूसरों के शरीर से संसर्ग न रखने की भावना जागती है। आभ्यन्तरिक-पवित्रता के अभ्यास से चित्त-शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों पर वशीकार और आत्म-दर्शन की क्षमता उत्पन्न होते हैं। सन्तोष के अभ्यास में दृढ़ता आ जाने से योगी को ऐसे सुख की प्राप्ति होती है, जिसकी बराबरी कोई भी सांसारिक सुख नहीं कर सकता। तपस्या के अभ्यास से योगी के शरीर और इन्द्रियों के मल का नाश हो जाता है और उसे काय-सम्पद् और इन्द्रिय-सम्पद् रूप सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। स्वाध्याय के पूर्वोक्त नियमों का भली-भाँति पालन कर लेने से योगी को अपने इष्ट देवता के दर्शन होते हैं। ईश्वर-प्रणिधान के अभ्यास से समाधि की सिद्धि होती है।

उपरोक्त दसों व्रतों का भली-भाँति पालन करने वाला योगी न चाहते हुए भी सांसारिक सुखों पर अपना वश कर लेता है, सिद्धि और समाधि की भी प्राप्ति करता है।

आसन-प्राणायाम

योग के अभ्यासी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह शरीर और प्राणों को स्थिर बना ले। इसके लिए आसन और प्राणायाम का विधान है।

आसन व्यायाम के रूप में भी होते हैं और समाधि के अभ्यास के लिए बैठक के रूप में भी। समाधि की सिद्धि के लिए योगी को आसन पर निश्चल होकर और

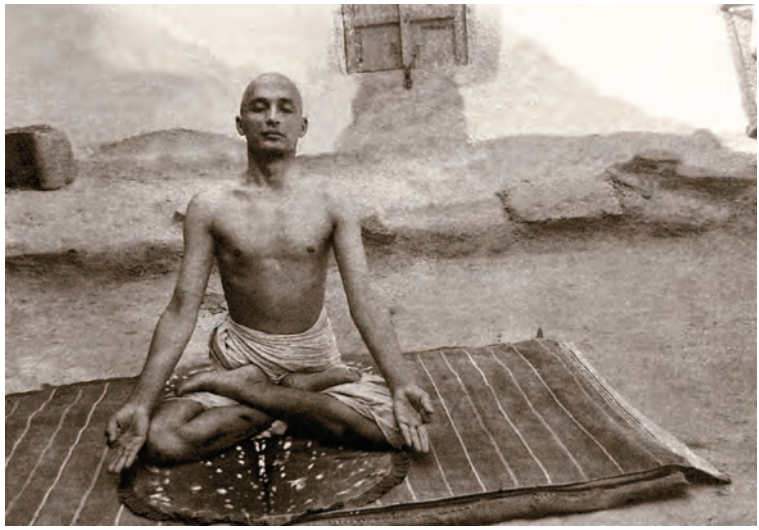

सुख के साथ ऐसे बैठना चाहिए, जिसमें मेरूदण्ड सीधा रहे और अंगों में पीड़ा न हो। सिद्धासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन और वीरासन–इन चारों में से किसी एक आसन को सुविधानुसार चुन लिया जाय।

आसन में स्थिरता और शिथिलता को ले आने के लिए शरीर-सम्बन्धी सब प्रकार की चेष्टाओं को त्याग कर अनन्त परमेश्वर में चित्त को लगा देना चाहिए। आसन के सिद्ध हो जाने पर शरीर गर्मी और सर्दी जैसे अनुकूल और प्रतिकूल प्रभावों से अचंचल हो जाता है, शरीर में स्थिरता आ जाती है और समाधि की बाधाभूत विक्षेप-वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं।

जिस तरह शरीर की स्थिरता आसनों से सिद्ध होती है, वैसे ही प्राणों की स्थिरता प्राणायाम से। आसन सिद्ध होने के बाद प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। श्वास और प्रश्वास के तार को तोड़कर अलग कर देने का नाम प्राणायाम है। श्वास और प्रश्वास के तारों को तोड़ने के लिए उपाय है श्वास को अन्दर और बाहर रोकना।

प्राणायाम में प्राणवायु को बाहर और अन्दर स्तम्भित कर तीन बातों का पहले ख्याल रखना चाहिए। एक तो यह देखा जाय कि प्राणवायु अन्तर्कुम्भक में किस स्थान तक अन्दर में पहुँच रही है और बाह्य-कुम्भक में कितने अंगुल तक बाहर जा रही है। दूसरा यह कि कितनी मात्रा तक अन्तर्कुम्भक और बहिर्कुम्भक होता है। तीसरा यह कि कितनी संख्या तक उनका अभ्यास हो रहा है, अर्थात् प्राणायाम की कितनी आवृत्तियाँ हो पा रही हैं।

क्रिया इस प्रकार है। मात्रानुसार पूरक कीजिए और किसी भी अन्त: प्रदेश में कुम्भक कर निश्चित समय को नापिए। तदनन्तर मात्रानुसार रेचक करते हुए श्वास

का अंगुल-प्रमाण देखिए और अन्त में बाह्य कुम्भक कर किसी भी अन्त:प्रदेश में मात्रानुसार समय नापिए। इसी की आवृत्ति कीजिए।

उपरोक्त प्राणायाम के अतिरिक्त एक और प्राणायाम की क्रिया है। इसमें बाहर व भीतर के विषयों का त्याग कर देने से पूरक और रेचक को समान बना दिया जाता है। इसका अभ्यास दीर्घकाल तक होने से चित्त अपने आप थम जाता है।

प्राणायाम का अभ्यास करते-करते अविद्याजनित आवरण, जिससे आत्म-ज्ञान-रूपी प्रकाश छिपा है, नष्ट हो जाता है और मन में किसी भी विषय की स्थिरतापूर्वक धारणा करने की क्षमता आ जाती है। प्राणायाम के अभ्यास से, विशेष रूप से चतुर्थ प्राणायाम के द्वारा, चित्त की गति थम जाती है और इष्ट-विषय की, जितनी देर चाहो, भावना की जा सकती है।

प्रत्याहार

इन्द्रियों का अपने विषयों से उपरत होकर चित्त-वृत्ति का अनुगमन करना 'अष्टांग-योग' की पाँचवी साधना है। इसे प्रत्याहार कहते हैं।

इन्द्रियाँ अपने पाँच विषयों में रमण करती हैं और शब्दादि ज्ञान प्राप्त करती हैं। यह इन्द्रियज्ञान बहिर्मुखी वृत्तियों का परिणाम है। जब चित्त अपने ध्येय-स्वरूप के अभिमुख होता है, उस समय शब्दादि-विषयों का क्रमिक अथवा सर्वथा लोप होने लगता है और वे भी अन्तर्मुख होकर चित्त में मिल-सी जाती हैं।

वास्तव में इन्द्रियाँ जड़ हैं, उनके अन्तर्मुख होने का सवाल ही नहीं उठता। यह तो चित्त ही अपने को इन्द्रियों के माध्यम से बहिर्मुख कर शब्दादि का ग्रहण करता है, और ध्येयाभिमुख होकर अपनी ही शब्दादि का अनुभव करने वाली चेतना को अन्तर्मुख करता है। अत: बहिर्मुख-चित्त का, जिसे कर्मभाव से इन्द्रिय-समूह कहते हैं, अन्तर्मुख होना प्रत्याहार है।

अन्तर्मुख-वृत्ति के प्रवृत्त हो जाने से बहिर्मुखी वृत्ति याने इन्द्रिय-समूह की संवेदनशीलता व उनकी विषयाकार-वृत्ति पर योगी का पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जाता है। यह अवस्था प्रत्याहार की है।

धारणा, ध्यान एवं समाधि

यम-नियमादि पांच क्रियात्मक साधन, मन्द अधिकारियों के लिए उनको उत्तम बनाने के हेतु हैं। शेष तीन साधन—धारणा, ध्यान और समाधि उत्तम अधिकारियों के लिए हैं।

चित्त की वृत्ति को किसी भी स्थान पर थामना, ठहराना और बाँधना 'धारणा' है। इसे किसी बाह्य तत्त्व पर त्राटक द्वारा साधा जाता है, अथवा अपने अन्तरंग तत्त्वों पर भी। कोई श्वास पर चित्त को थामते हैं तो कोई बाह्य-इन्द्रियों के विषयों

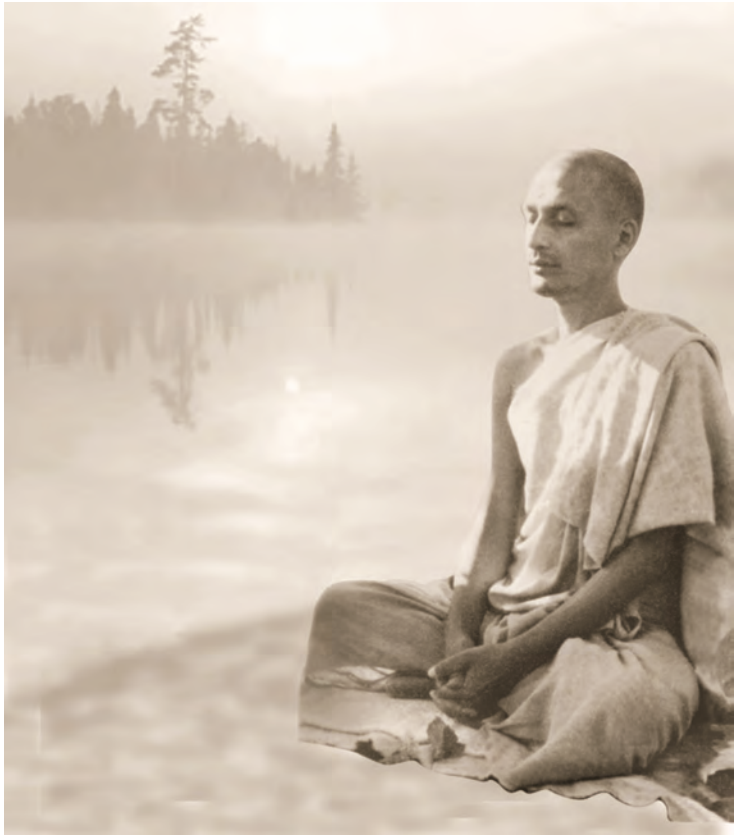

पर। कोई इष्टदेव पर त्राटक तथा धारणा करते हैं तो कोई शून्याकार-वृत्ति से मन को थामते हैं तो कोई संगीत की लय और ताल पर मन को लगाते हैं। इसी प्रकार चित्त को किसी भूमि पर और किसी भी उपाय से ठहराना 'धारणा' कहलाती है।

जब चित्त-वृत्ति अपने ध्येय-रूप आलम्बन पर एकतार और लगातार लगी रहती है, तथा कोई दूसरी वृत्ति बीच में नहीं आती, उस अवस्था को 'ध्यान' कहते हैं। धारणा-काल में एक-वृत्तिरूप ध्येय के बीच-बीच में अन्य विजातीय वृत्तियाँ भी आती-जाती रहती हैं और ध्याता, ध्यान तथा ध्येय-रूप त्रिपुटी विद्यमान रहती है। ध्यान में त्रिपुटी रहती है, किन्तु एक-वृत्तिरूप ध्येय सजातीय वृत्तियों के साथ प्रवाहवत् एकतार बना रहता है।

समाधि में यही ध्यान अभ्यास के बल से बढ़ते-बढ़ते त्रिपुटी-रहित हो जाता है और ध्येय-मात्र प्रकाशित रहता है। इस अवस्था में ध्यान से यही अन्तर है कि ध्यान-काल में ध्येय की अनुभूति होती है, किन्तु समाधि में ध्येय मात्र के रहने

से ध्यान की क्रिया स्वरूप से शून्य जैसी हो जाती है। अथवा यूँ कहें कि ध्यान में त्रिपुटी-सहित ध्येय प्रकाशित रहता है और समाधि में त्रिपुटी-रहित 'केवल ध्येयमात्र'। समाधि की इस प्रारम्भिक अवस्था को निर्वितर्क-सम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं। यह सबीज समाधि है।

संक्षेप में धारणा, ध्यान और समाधि चित्त-परिणाम की तीन श्रेणियाँ हैं। चित्त को एकत्र कर एक ओर लाना धारणा, एक ही स्थान पर लगाए रखना ध्यान और ध्येय ही में सीमित हो जाना समाधि है। धारणा परिपक्व होकर ध्यान में और ध्यान ही समाधि में परिणत होता है। इन तीनों के समुदाय को यौगिक भाषा में संयम कहा जाता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिरंग साधन हैं तथा धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग साधन हैं सम्प्रज्ञात-समाधि के। बहिरंग साधनों से चित्त का बहिर्मुखी क्षेत्र सीमित होता जाता है, तथा अन्तरंग साधनों से चित्त की अन्तर्मुखी वृत्ति को निरोध-परिणाम की ओर उन्मुख किया जाता है।

बाहरी इन्द्रियों और जगत् से सम्बन्ध रखने वाले साधनों को बहिरंग तथा चित्त-वृत्तियों से सम्बन्ध रखने वाले साधनों को अन्तरंग कहा गया है। जिस तरह पाँच क्रियात्मक साधनाएँ संयम की अपेक्षा बहिरंग थीं, वैसे ही असम्प्रज्ञात समाधि की अपेक्षा धारणादि तीनों संयम भी बहिरंग हैं। निर्बीज समाधि का साधन है पर-वैराग्य, जो साधन होते हुए भी साध्य की तरह निर्विषय और निरालम्ब है। धारणादि साधनाएँ सालम्ब हैं, अत: निर्बीज समाधि की अपेक्षा, जिसका साधन पर-वैराग्य है, बहिरंग हैं।

समाधि के तीन दर्जे हैं—सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात और धर्ममेघ कैवल्य-समाधि। जिस समाधि में ध्येय का आकार रहे वह सम्प्रज्ञात, जब ध्येय का केवल संस्कार रहे वह असम्प्रज्ञात, जब ध्येय का नितान्त लोप हो जाय तो धर्ममेघ। धर्ममेघ-समाधि वैराग्य की चरम-गति है। इसमें पुरुषख्याति के उपरान्त प्रज्ञा से भी राग टूट जाता है, तदुपरान्त असम्प्रज्ञात के निरोध-संस्कारों से भी वैराग्य हो जाता है। जब समस्त संस्कारों का समूल नाश हो जाता है, तब उस मुहूर्त में धर्ममेघ समाधि का अवतरण होता है।

ज्ञान की इस परिपक्व अवस्था में योगी चित्त और चिति के भेद को प्रत्यक्ष जानकर, और यह जानकर कि आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं, अपने को भी भूल जाता है। उस काल में वह विवेक-मार्ग का अनुसरण कर कैवल्य-ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान की इस परिपक्व अवस्था में, सब प्रकार के आवरणों और मलों के हट जाने से, ज्ञान की अनन्तता में, योगी के लिए जानने योग्य कुछ और शेष नहीं रहता। यही कैवल्य है।

—स्वर्णिम संग्रह-3 में पुनर्प्रकाशित 'समाधि विद्या' से उद्धृत

मन के आयाम

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

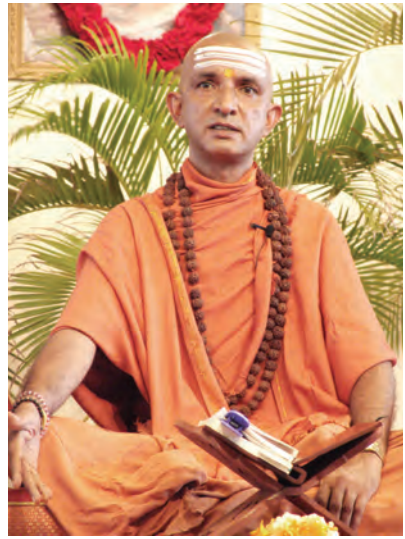

मन के बारे में आदिकाल से ही लोगों ने चिंतन और विचार किया है। देखा जाए तो पूरा मानव जीवन मन का ही एक खेल है। मन ही सब कुछ करना और पाना चाहता है, उसकी चाह के अनुसार ही हम लोग अपने जीवन में तरह-तरह के प्रयास करते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस जीवन में दो ही मुख्य तत्त्व हैं—एक है मन और दूसरा है प्राण। इन्हीं के कारण जीवन का, संसार का और अपना अनुभव हो पाता है। प्राण शरीर को संचालित करता है, प्राण के कारण ही पदार्थ में जीवन का संचरण होता है। जहाँ तक मन का सवाल है, यह पदार्थ का सूक्ष्म रूप माना गया है जिसका आधार चेतना है, ऊर्जा नहीं। इस बात को याद रखना कि जैसे हम अपने जीवन में प्राण और मन का अनुभव करते हैं और वे दोनों ही हमारे जीवन में क्रिया एवं अनुभव के आधार बनते हैं, वैसे ही उच्च आयाम में भी यही प्राण और मन विद्यमान रहते हैं। लेकिन इनका नाम बदल जाता है। जो प्राण है, वह शक्ति कहलाती है और जो मन है, वह चेतना कहलाता है।

भारतीय दर्शन में शक्ति और चेतना की अवधारणा

भारतीय दर्शन के अनुसार शक्ति और चेतना का योग ही ब्रह्म तत्व का स्वरूप होता है। ब्रह्म उसे कहते हैं जिसके विकास की प्रक्रिया अबाधित रूप से निरंतर होती रहती है। यह मात्र ईश्वर का बोधक नहीं है, बल्कि एक ऐसी अवस्था की ओर संकेत करता है, जिसमें शक्ति और चेतना, दोनों साम्य अवस्था में विद्यमान रहते हैं, दोनों शांत और स्थिर होकर योग की अवस्था में रहते हैं। इन दोनों में कहीं पर भी विक्षेप उत्पन्न नहीं होता।

ब्रह्म तत्त्व अव्यक्त के क्षेत्र में शक्ति और चेतना का मिश्रण है। यही चेतना और शक्ति व्यक्त जगत् में अनेक रूपों को धारण करके, अनेक योनियों में, अनेक

जीवों के रूप में अपने आप को प्रकट करते हैं। वास्तव में देखा जाए तो जीवन शक्ति और चेतना का ही परिणाम है। अगर आप जीवन से चेतना या शक्ति को हटा दें तो जीवन का अनुभव सम्भव नहीं होगा। इसलिए कहा जा सकता है कि शक्ति तथा चेतना के योग से ही शरीर का, जीवन का और व्यवहार का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

चेतना का व्यक्त स्वरूप

मन चेतना का एक व्यक्त रूप है। सूर्य का प्रकाश चारों तरफ समान रूप से फैलता है, लेकिन जब वही सूर्य का प्रकाश खिड़की से अंदर प्रवेश करके एक स्थान को आलोकित करता है, तब वह एक किरण के रूप में, एक रश्मि के रूप में दिखलाई देता है। आप यह नहीं कहेंगे कि कमरे में सूर्य आ गया, बल्कि यह कहेंगे कि कमरे में सूर्य की एक किरण आई है।

उसी रूप में चेतना और मन को भी देखना है। ब्रह्माण्डीय चेतना खण्डित नहीं, अखण्ड है; सीमित नहीं, अनंत है; अविद्या में नहीं, सर्वज्ञ है। यह ब्रह्माण्डीय चेतना का मूल रूप है। लेकिन सृष्टि के क्रम में एक शरीर के भीतर जब यही चैतन्यता प्रकट होती है, तब सूर्य-किरण की भाँति इस चैतन्यता का बोध मन के रूप में होता है। जो तत्त्व पहले अव्यक्त में चेतना कहलाया, वह इस व्यक्त जीवन और शरीर में मन कहलाता है। संसार से हम लोगों का जो सम्बन्ध और व्यापार है, उसका आधार मन ही रहता है।

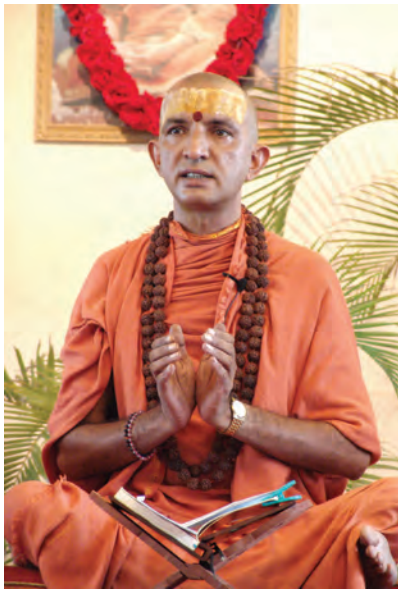

उपनिषदों में बतलाया गया है कि जैसे एक बैलगाड़ी के चक्के का मध्य केन्द्र होता है, जहाँ से स्पोक्स या आरे निकलते हैं, वैसे ही सृष्टि का मध्य केन्द्र ब्रह्म है, जिससे उसके स्पोक्स निकले हैं। ये स्पोक्स ही प्रकृति के विभिन्न अंग हैं। जहाँ पर वे आकर मिलते हैं, वह ब्रह्म है। हमारे शास्त्रों ने प्रकृति को आठ रूपों में देखा है। मन उसी प्रकृति का एक अंग है, जिसके द्वारा जीवन एवं संसार का बोध होता है।

हमारे शास्त्रों में मन को दो रूपों में जाना गया है। पहला अष्टधा प्रकृति के एक अंग के रूप में और दूसरा एक इन्द्रिय के रूप में। जब मन को अष्टधा

प्रकृति का स्वरूप कहते हैं, तब वह जीवन के व्यवहार को दर्शाता है। जैसे एक गाड़ी को चलाने के लिए पेट्रोल की आवश्यकता होती है, वैसे इस जीवन को संचालित करने के लिए मन की आवश्यकता होती है। अगर मन न रहे, केवल प्राण रहे तो क्या होगा? कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि प्राणों को निर्देशित करने के लिए मन की आवश्यकता होती है। यह मानकर चलो कि जैसे किसी गाड़ी में इंजिन, ब्रेक और बैट्री के रहते हुए भी पेट्रोल की आवश्यकता होती है, वैसे ही शरीर में मस्तिष्क, तंत्र-तंत्रिकाओं, अंगों और इन्द्रियों के रहते हुए भी मन के बिना इनका कोई उपयोग नहीं हो पाता है। जीवन का पेट्रोल मन है, जो इस शरीर रूपी गाड़ी को संचालित करता है। जिस मन के बारे में हम बात कर रहे हैं इसको अगर शास्त्रीय भाषा में देखा जाए तो यह मन नहीं कहलायेगा, बल्कि इसे अंत:करण अथवा महत् तत्त्व कहेंगे। सांख्य दर्शन में इस सिद्धांत को भली-भाँति समझाया गया है।

अंत:करण की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ

अंत:करण का मतलब होता है सूक्ष्म उपकरण, जिसके द्वारा जीवन का, संसार का, सृष्टि का बोध होता है और हम इनसे जुड़ पाते हैं। इस अंत:करण या महत् के चार अंग, रूप या कार्य होते हैं, जिनमें पहला है 'अहंकार'। यह जीवन के ज्ञान और अनुभव का माध्यम बनता है। अंत:करण का दूसरा स्वरूप है 'चित्त'। चित्त के द्वारा चेतना में छिपे संस्कारों का बोध होता है और इसीलिए चित्त को स्मृति के रूप में भी माना गया है। केवल इस जीवन की स्मृतियाँ ही नहीं, बल्कि पूर्वजन्मों की स्मृतियाँ, पूर्वजन्मों के संस्कार, जो आज हमारे जीवन का निर्माण कर रहे हैं, वे भी चित्त के अंग होते हैं। अंत:करण का तीसरा रूप 'बुद्धि' है। बुद्धि संसार से व्यापार करने के लिए, संसार से सम्बन्ध जोड़ने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। और इस अंत:करण का चौथा स्वरूप है 'मन', जो हमारे भीतर संकल्प-विकल्प का केन्द्र बनता है।

अंहकार–सांख्य दर्शन में बतलाया गया है कि अंत:करण का पहला अंग अंहकार, पृथ्वी तत्त्व से उत्पन्न होता है। पृथ्वी जीवन के विकास का आधार है। मकान हवा में नहीं बनता, आग में नहीं बनता, पानी में नहीं बनता, बल्कि धरती पर बनता है। हम लोग जो जीवन बिताते हैं, वह आकाश, अग्नि या वायु में नहीं, धरती पर बिताते हैं। पृथ्वी तत्त्व जीवन का आधार माना गया है और अहंकार भी जीवन का आधार है। अस्मिता अर्थात् 'मैं हूँ' का ज्ञान ही अंहकार है, और यह ठोस ज्ञान है। मुझे इस बात का बोध है कि 'मैं हूँ', 'मेरा शरीर है', 'यह मेरा व्यक्तित्व है', 'यह मेरी मानसिकता है'। 'मैं' का यह ठोस ज्ञान अहंकार का रूप होता है और इसकी उत्पत्ति पृथ्वी तत्त्व से होती है।

चित्त–चित्त संस्कारों का केन्द्र है। इसकी उत्पत्ति जल तत्त्व से होती है और योग शास्त्र के अनुसार जल चेतन, अवचेतन और अचेतन का प्रतीक होता है। अगर कुण्डलिनी योग का अध्ययन करोगे और चक्रों के सिद्धांतों को जानने का प्रयास करोगे तो पाओगे कि मूलाधार चक्र में पृथ्वी तत्त्व है, जो पदार्थ का आधार है और स्वाधिष्ठान चक्र में जल तत्त्व है, जो चित्त का अधिष्ठान है।

बुद्धि–उसके पश्चात् बुद्धि है जिसका जन्म अग्नि तत्त्व से हुआ है। बुद्धि के द्वारा हम एक निर्णय, संकल्प, उद्देश्य और लक्ष्य को लेकर ज्ञान एवं विवेक के द्वारा अपने जीवन को उस दिशा में आगे बढ़ा सकते हैं।

मन–अंत में मन है। मन की उत्पत्ति वायु तत्त्व से होती है। अपने मन के स्वभाव को देख लो, मालूम पड़ जायेगा कि हवा जैसा है। कभी यहाँ तो कभी वहाँ, कभी हवा में सुंगध है तो कभी दुर्गंध, कभी हवा में गर्मी है तो कभी ठण्ढी है। आप हवा में जो बाहर अनुभव करते हो, वही चीज़ अपनी खोपड़ी के भीतर, मन के भीतर भी अनुभव करते हो। कभी गर्मी है तो कभी ठण्ढी। कभी चंचलता है तो कभी स्थिरता। कभी दुनिया की सैर कर रहे हैं, तो कभी अपने ही दु:खों मे लिप्त हैं। इसलिए हमारे शास्त्रों ने मन को वायु तत्त्व के साथ जोड़ा है।

इस प्रकार अहंकार पृथ्वी तत्त्व से, चित्त जल तत्त्व से, बुद्धि अग्नि तत्त्व से और मन वायु तत्त्व से प्रकट हुआ है। ये मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार अंत:करण के माध्यम बनते हैं। इसी अंत:करण के द्वारा सूक्ष्म क्रिया आरम्भ होती है जो जीवन में प्रकट होकर पूरे जीवन को संचालित, प्रभावित और परिवर्तित करती है।

अंत:करण में वृत्ति भेद

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को स्याही की चार बोतलें मानकर चलो–एक काली, दूसरी लाल, तीसरी हरी और चौथी नीली। अगर स्याही की एक बूँद भी बाल्टी भर पानी में पड़ जाएगी तो जल का रंग बदल जायेगा। स्पष्ट जल की हजार बूँदों का रंग काली स्याही की एक बूँद से बदल जाएगा। अंत:करण की इन चार क्रियाओं को वृत्ति भेद कहा गया है, क्योंकि जब एक प्रबल होती है, चाहे वह अहंकार हो या बुद्धि, चित्त अथवा मन, उसकी प्रबलता से मन में एक विशेष वृत्ति पनपेगी, एक विशेष मानसिक अवस्था का बोध होगा, चाहे वह अच्छी हो या बुरी। एक परिवर्तित अवस्था का बोध अवश्य होगा, चाहे वह सुखद हो या दु:खद। जैसे जल की स्पष्टता एक बूँद स्याही से धूमिल हो जाती है, वैसे ही अंत:करण का स्वरूप भी एक बूँद अहंकार से, एक बूँद चित्त से, एक बूँद बुद्धि से और एक बूँद मन से परिवर्तित हो सकता है। स्वाभाविक स्वरूप में होने वाले इस परिवर्तन को ही वृत्ति कहा गया है।

योग दर्शन में महर्षि पतंजलि समझाते हैं कि मन का अनुभव इन्हीं वृत्तियों के द्वारा होता है। ये वृत्तियाँ सुखदायक भी होती हैं और दु:खदायक भी। महर्षि

पतंजलि कहते हैं *'वृत्तय: पंचतय्य: क्लिष्टाक्लिष्टा:'* अर्थात् वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं। वैसे वृत्तियाँ अनेकों होती हैं, लेकिन उन्होंने मानसिक व्यवहार को अपने नियंत्रण में लाने के लिए पाँच प्रकार की वृत्तियों का ही वर्णन किया है। ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ हैं–प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

वृत्तियों का निरोध

महर्षि पतंजलि के अनुसार योग अवस्था को प्राप्त करने के लिए इन पाँच वृत्तियों को समझना, जानना और इनके पार जाना आवश्यक होता है। वृत्ति शब्द की उत्पत्ति होती है वृत्त से। जिसमें तुम गोल-गोल घूमते रहो और जिससे तुम अपने आप को मुक्त नहीं कर पाओ, वह है वृत्ति।

बेटी की शादी में वर पक्ष वाले कुछ ज्यादा अपेक्षा रखते हैं और आपकी नींद चिंता के कारण चौपट हो जाती है। यह वृत्ति है। आप उस चक्कर में पड़ जाते हैं और उससे मन को मुक्त नहीं कर पाते। किसी से झगड़ा हो जाता है, वह झगड़ा पूरे मन और भावनाओं को उत्तेजित कर देता है, उस उत्तेजना से हम अपने आप को मुक्त नहीं कर पाते। यह वृत्ति है। एक कामी व्यक्ति काम वृत्ति को पकड़ कर चलता है तो एक योगी ब्रह्म वृत्ति को पकड़ कर चलता है। जो जीवन के जिस क्षेत्र में रहता है और जीवन का जैसा लक्ष्य रहता है, वह उस प्रकार की वृत्ति को अपनाता है। उस वृत्ति को अपने जीवन का आधार बनाकर उस मार्ग पर चलने का प्रयास करता है।

वृत्तियाँ मन की साम्यावस्था में परिवर्तित स्थितियाँ हैं। वे इन्द्रियों तथा मन के संयोग के कारण जन्म लेती हैं। यदि इन्द्रिय और मन का संयोग न हो तो वृत्ति भी जन्म नहीं लेगी। इन्द्रिय कोई चीज़ देखती है और मन उसके प्रति कामना को उत्पन्न करता है। इन दोनों के योग से फिर मन का चक्कर शुरू होता है।

मान लीजिए हम गरीब आदमी हैं। हमारे पास धन-संपत्ति नही, अभी तक हम साईकिल से ही अपने सभी काम कर रहे थे। हमें एक अच्छी गाड़ी की खबर मिलती है। हमने कुछ पैसा जमा किया कि अब हम साईकिल छोड़कर एक मोटर साईकिल खरीदेंगे। लेकिन फिर हमें खबर मिलती है कि अगर हम थोड़ा-सा और पैसा खर्च करें तो हमको नैनो कार मिल जायेगी। फिर उसके लिए हमारा प्रयास शुरू हो जाता है।

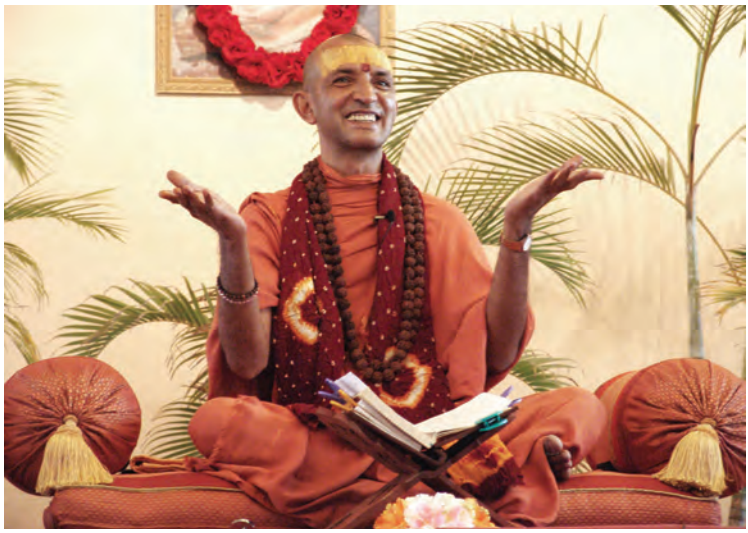

आँखें देखती हैं नैनो गाड़ी को और बुद्धि कहती है कि थोड़ा और कमाओगे तो तुम ले सकते हो, यह तुम्हारी हैसियत के भीतर है। इन्द्रिय ने गाड़ी देख ली, बुद्धि ने यह निर्णय दिया, और उसके बाद फिर मन का चक्कर शुरू होता है। हम बैंक बेलेंस देखते हैं। अभी बैंक में कितना है? मैं कितना खर्चा कर सकता हूँ? कितने दिन रुकना पड़ेगा? कहीं से मैं कर्ज लूँ या न लूँ? इस तरह एक वृत्ति का निर्माण हो रहा है, जो विशेष पदार्थ से जुड़ करके उसको प्राप्त करने के लिए है।

इन्हीं वृत्तियों के निरोध के लिए महर्षि पतंजलि राजयोग की शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं कि वृत्तियों के कारण तुम्हारा मन हमेशा चंचल रहता है और चंचल मन कभी एकाग्र नहीं हो पायेगा, कभी ध्यान को सिद्ध नहीं कर पायेगा, कभी समाधि का अनुभव नहीं कर सकेगा। इसलिए तुम्हारे चित्त को विचलित करने वाली ये जो परिस्थितियाँ हैं, उन्हें जानने का, समझने का, परिवर्तित करने का प्रयास करो। इसके लिए उन्होंने एक विशेष शब्द का प्रयोग किया–'वृत्ति-निरोध।'

उन्होंने वृत्ति-विरोध शब्द का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने यह नहीं कहा कि तुम अपनी मानसिक अवस्थाओं का विरोध करो, उनके साथ संघर्ष करो। सामान्यतया हमलोग निरोध नहीं, विरोध करते हैं। जब मंत्र जप या ध्यान के लिए बैठते हैं, तब विचार आता है कि ध्यान नहीं लग रहा, मन भाग रहा है। फिर मन के साथ कुश्ती होती है कि इसे किसी तरह एकाग्र किया जाए, ध्यान की स्थिति में जमा दिया जाए। वहाँ पर उस चंचल वृत्ति का विरोध हो रहा है, उसके साथ कुश्ती हो रही है, जबकि योग कहता है, विरोध या अवरोध नहीं, बल्कि निरोध होना चाहिए।

निरोध का क्या मतलब होता है? एक घटती हुई प्रक्रिया को रोक देना। पानी बह रहा है, वहाँ पर हमने हाथ रख दिया, पानी का बहना रुक गया। विचार आ रहा है, लाल बत्ती दिखा दी, विचारों का आना कम हो गया। निरोध का अर्थ होता है कि जो सामान्य प्रक्रिया है, उसका विरोध नहीं करके उसे सही दिशा में लगा देना। मन भागता है ध्यान के समय, आप चिंता करते हो कि मेरा मन नहीं लग रहा है, मुझे फायदा नहीं होगा। अपने साथ ही संघर्ष शुरू हो जाता है। आप विरोध कर रहे हो। लेकिन अगर इस बात को जान लोगे कि मन नहीं लग रहा है तो धीरे-धीरे मन को सम्भालने का प्रयत्न करोगे। वह हो जायेगा मन की चंचलता का निरोध और एकाग्रता की प्राप्ति।

अगर एक बूँद काली स्याही एक गिलास साफ पानी में पड़ जाए, कोई बात नहीं, पर दस बूँद मत डालो। उसको और काला मत करो। जो हुआ है उसको स्वीकार कर लो। उसका विरोध भी मत करो, लेकिन उसकी वृद्धि नहीं होने दो, उसको और मत बढ़ने दो। जो चीज बिगड़ी है, उसे साफ करने का प्रयास करो। कैसे करोगे? ऊपर से कुछ और स्वच्छ जल डाल दो, वह कालापन दूर हो जाएगा।

मन का अणु और विभु स्वरूप

मन को एक और दृष्टि से देखा जा सकता है। मन अणु भी है और विभु भी। अणु मतलब कि वह एक शरीर के भीतर सीमित है, व्यापक नहीं है। जब यह मन एक ईकाई के रूप में, एक अणु के रूप में हम लोगों के जीवन में विद्यमान रहता है, तब यह केवल हमारे जीवन का संचालन करता है और हमारी ही कामनाओं और इच्छाओं को जन्म देता है। तब इसका स्वरूप स्वार्थ का हो जाता है।

विभु अवस्था में मन का रूप व्यापक हो जाता है। अपने आप से ही नहीं जुड़कर, वह अन्य मनों से अपने आप को जोड़ता है। मन ऊर्जा का स्वरूप है। ऊर्जा ही ऊर्जा से अपने आपको जोड़ती है। मन का यह विभु स्वरूप संतों के जीवन में दिखलाई देता है। इसे मैं दो दृष्टान्तों से समझाता हूँ।

एक घटना साईं बाबा के जीवन में घटित हुई थी। एक बार वे अपने आश्रम में धूनी के पास बैठे थे। शाम का समय था। अचानक लोगों ने देखा कि साईं बाबा ने अपना हाथ धूनी के अग्निकुण्ड में डाल दिया और उनका हाथ जल गया। बाद में उन लोगों को पता चला कि जिस समय साईं बाबा ने अपना हाथ अग्नि में डाला था, उसी समय किसी दूसरे शहर में उनके भक्त का एक छोटा-सा बच्चा जलते चूल्हे में लड़खड़ाकर गिर गया था। उस बालक के माता-पिता बताते हैं कि चूल्हे में गिरकर भी उस शिशु के शरीर पर कोई जलने का चिह्न नहीं आया। कुछ सप्ताह बाद जब यह दम्पत्ति साईं बाबा के दर्शन के लिए पहुँचता है, तब उन्हें जानकारी मिलती है कि ठीक उसी समय साईं बाबा ने अपना हाथ अग्नि में डाला था। उन्हें

मालूम पड़ गया कि उन्होंने ही शिशु को अग्नि में जलने से बचाया था। अब क्या यह चमत्कार है या मन का विभु स्वरूप?

जो गुरुजन होते हैं, उनका मन दूसरे मनों के साथ जुड़ जाता है। हम अपने मन को दूसरों के साथ नहीं जोड़ सकते, लेकिन गुरुजन सक्षम होते हैं। साईं बाबा का मैंने दृष्टान्त दिया, ऐसी ही घटना अपने गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी के जीवन में देखी है और वह भी ऐसे समय जब पंचाग्नि काल के दौरान वे किसी से मिलते तक नहीं थे। एक-दो संन्यासियों को छोड़कर बाहर का कोई भी व्यक्ति उनसे मिल नहीं पाता था।

एक दिन वे पंचाग्नि साधना से उठकर स्वामी सत्संगी को बुलाकर कहते हैं, 'पास के किसी गाँव में एक घर जल गया है। पति उस अग्निकाण्ड में मर गया है, पत्नी विधवा हो गयी है। उसके तीन बच्चे हैं। रहने के लिए घर नहीं है, पहनने के लिए वस्त्र नहीं हैं, खाने के लिए अन्न नहीं है। उनको खोजो और उनके लिए समुचित व्यवस्था करो।' इस महिला को खोजने में चार-पाँच दिन लगे। उसका गाँव दस किलोमीटर दूर था। जो घटना श्री स्वामीजी ने पाँच दिन पहले पंचाग्नि से उठने के पश्चात् हम लोगों को बताई थी, हूबहू वही घटना घटी थी। अग्निकाण्ड में पति की मृत्यु हो गई थी, वह विधवा स्त्री एक पेड़ के नीचे अपने तीन छोटे बच्चों के साथ अपने भाग्य को कोसती प्रतीक्षा कर रही थी कि कोई उसकी सहायता करे। उस दुखिया के मन से जो पुकार निकली, उसे एक संत ने सुना। यह मन के विभु स्वरूप को दर्शाता है कि कैसे उस संन्यासी को सुदूर घटित घटना का आभास हो गया। मैंने आपको ये दृष्टान्त यही स्पष्ट करने के लिए बताए कि मन के दो स्वरूप हैं—अणु और विभु। अणु मन हममें सीमित है जबकि विभु मन सभी से जुड़ा हुआ है।

—25 अप्रैल 2010, योगदृष्टि सत्संग शृंखला, गंगा दर्शन

मजबूत मन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जिस तरह से शरीर की बीमारियाँ होती हैं, उसी प्रकार से मन की भी बीमारियाँ होती हैं। इसी मन की बीमारी के कारण हमारे घर, परिवार और समाज में कई प्रकार की तकलीफें होती हैं। आपको यह शरीर तो दिखलाई देता है, लेकिन मन नहीं दिखलाई देता। इसलिये होता यह है कि आप मन के बारे में एकदम अनजान रहते हैं। आप शरीर को रोज साफ करते हो, रोज स्नान करते हो और रात को इसे आराम देते हो। दिन को इसे भोजन खिलाते हो और यह जब बीमार हो जाता है तो इसे डॉक्टर के पास ले जाते हो, इसका इलाज कराते हो। लेकिन आप लोगों ने कभी यह सोचा कि हम क्या इस मन को रोज स्नान कराते हैं, क्या इसे भोजन खिलाते हैं, क्या इसकी बीमारी का इलाज करते हैं, क्या कभी हम इसे आराम या नींद देते हैं? इस पर विचार करो तो आपको मालूम पड़ेगा कि हम लोगों ने मन के साथ बहुत अन्याय किया है।

मान लो, हमारे दो बेटे हैं। हम क्या करते हैं कि छोटे बेटे को बढ़िया कपड़ा देते हैं, बढ़िया भोजन देते हैं, और बड़े बेटे की कुछ भी सेवा नहीं करते। उसे खाना भी नहीं देते। दिन-रात बड़ा बेटा घर की सेवा करता है, साफ-सफाई करता है, बाजार से सामान लाता है, नौकरी-चाकरी करता है, मगर जब घर में आता है तो उसको न खाना देते हो और न ही आराम। इससे क्या हो जाएगा? छोटा बेटा थोड़े दिन के अन्दर गोल-गप्पा हो जाएगा और बड़ा लड़का नहीं सोने से पागल हो जाएगा, नहीं खाने से अल्सर-टी.बी. हो सकता है और माता-पिता का प्रेम न मिलने से वह प्रमादी, मतवाला और उन्मत्त हो जाएगा।

जो बात मैंने आपको दृष्टान्त के रूप में कही, ठीक वैसा ही पक्षपात हम अपने शरीर और मन के साथ कर रहे हैं। आज का इंसान शरीर को तो बड़ा महत्त्व देता है, लेकिन मन को जानता ही नहीं। घर, परिवार और समाज में आज जितनी भी बीमारियाँ या दुर्घटनाएँ होती हैं, उन सबका कारण मन है। क्यों? इसलिए कि यह मन बीमार है। इसको हम लोग शास्त्रों में कहते हैं—आधि अर्थात् मानसिक बीमारी।

इसी मन को स्वस्थ बनाने के लिए हमारे यहाँ योगशास्त्र में बहुत बल दिया गया है। हमारे पूर्वज जानते थे कि मनुष्य की जो बीमारियाँ होती हैं, वे मन से ही पैदा होती हैं। घर में जो झगड़े होते हैं, वे मन से ही पैदा होते हैं। सास ने बहू को कुछ बोल दिया, ननद ने भौजाई को कुछ बोल दिया, बाप ने बेटे को कुछ बोल दिया, गुरु ने चेले को कुछ बोल दिया, अफसर ने कर्मचारी को कुछ बोल दिया—इससे झगड़ा नहीं होता, झगड़े का कारण होता है—बीमार मन।

हमारा शरीर हट्टा-कट्टा है, हम एक क्विंटल अनाज अपने बगल में लेकर स्टोर में ले जाते हैं। पर यदि कोई हमसे कहे कि तुम एक क्विंटल अनाज दो मील ले जाओ तो हम नहीं ले जा सकते, क्योंकि हमारा शरीर उस वजन को ज्यादा देर सहन नहीं कर सकता। जैसे शरीर के अन्दर में ताकत है, क्षमता है, उसी तरह मन की भी क्षमता होती है। मन के ऊपर मुसीबतें आती हैं, चिन्ता के भाव आते हैं, बड़ी-बड़ी समस्याएँ भी आ जाती हैं। अगर मन कमजोर है और उस पर वजन रख दिया जाए तो वह थक जाता है, गिर जाता है और लोग डॉक्टर के पास भागते हैं, कहते हैं, मुझे ब्लड-प्रेशर हो गया है। झूठ बोलते हैं, अरे! ऐसा क्यों नहीं कहते कि मेरा मन एक क्विंटल अनाज नहीं ले जा सकता।

इसलिए सबसे पहले अपने मन को मजबूत बनाओ। शरीर को मजबूत बनाने से कुछ नहीं होता। मोटे-तगड़े लोगों को हार्ट-अटैक हो जाता है एक ही बार में। मन को मजबूत बनाओ तो तुम्हारा नाम दुनिया में कायम रहेगा। क्या नेपोलियन, क्या लेनिन, क्या वाशिंगटन, क्या अब्राहम लिंकन, क्या गाँधी जी, क्या विनोबा, क्या रामकृष्ण परमहंस और क्या स्वामी विवेकानन्द—ये सभी लोग मजबूत मन वाले थे। जिस आदमी का मन मजबूत है उसे कोई बीमारी नहीं हो सकती। शरीर के साथ क्या होता है? बाजार सब्जी खरीदने गये, बरसात हो गई, घर में आये तो चार छींक। थोड़ा-सा पानी पड़ा तो चार छींक कहाँ से आ गई तुमको? मतलब शरीर कमजोर था। वैसे ही मन के साथ होता है। इम्तिहान में गये और जब नतीजा आया तो फेल हो गये। अब वहाँ भी छींक शुरू हो जाती है।

पास-फेल, सफलता-असफलता, निंदा-स्तुति तो दुनिया में चलती आई है। जन्म-मरण तो दुनिया में होता आया है। जब तुमने यह देह धारण किया है तो तुमको यह सब भुगतना ही पड़ेगा, चाहे तुम कलेक्टर-कमिश्नर हो या गरीब मजदूर—

देह धरे को दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान सो, मूरख भुगतै रोय॥

सबका बाप तो एक दिन मरेगा ही। नहीं मरेगा तो बेटा पहले मरेगा। दोनों में से एक को पहले मरना ही है। सम्पत्ति, सन्तति, नाम, यश, कुछ सनातन नहीं है। फिर मन पर क्यों असर पड़ने देना?

आसन–राजयोग के आलोक में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आसन की अवधारणा का सम्बन्ध मनुष्य की किसी विशेष शारीरिक स्थिति से है। यह पूर्ण आराम की, स्वयं के साथ पूर्ण सामंजस्य की अवस्था है। यह एक ऐसी चीज है जिसे ठीक से समझना आवश्यक है। बहुत-से लोग मानते हैं कि महर्षि पतंजलि तथा अन्य योगियों ने स्थिर आसनों की ही चर्चा की है जिनका उपयोग ध्यान में बैठने के लिए किया जाता है। जिन अभ्यासों में शरीर स्थिर नहीं रहता, उन्हें वे आसनों की श्रेणी में नहीं रखते हैं। अनेक लोगों ने आसनों को अपरम्परागत गत्यात्मक अवस्थाओं या परम्परागत स्थिर अवस्थाओं में वर्गीकृत किया है। किन्तु वास्तव में इस प्रकार आसनों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता।

आसन के विभिन्न पहलू

अपरम्परागत, गत्यात्मक आसनों का तात्पर्य वैसे आसनों से है जिनका अभ्यास तीव्र गति से किया जाता है। इनमें शरीर सतत् गतिशील बना रहता है, इसलिए अभ्यासी शान्त और आरामदायक अवस्था में नहीं रह सकता। सूर्य नमस्कार गत्यात्मक आसनों का एक उत्तम उदाहरण है, इसमें अभ्यासी निरन्तर एक से दूसरी स्थिति में गतिशील रहता है। लेकिन वस्तुत: यह आसनों के अभ्यास की मात्र एक अवस्था है। वास्तव में आसनों की पाँच अवस्थायें होती हैं जिन्हें हमें समझना चाहिये। सर्वप्रथम, सामान्य अवस्था में हम अपनी शारीरिक गति का उपयोग सीमित रूप में

करते हैं। दूसरी अवस्था आनन्ददायक और गत्यात्मक होती है; इसमें हम दौड़ते, कूदते तथा अपने शरीर को तानते हैं। तृतीय अवस्था में हम अपने शरीर के किसी भी अंग पर दबाव डाले बिना आराम से आगे या पीछे झुक सकते हैं। फिर चौथी अवस्था आती है, जिसमें हम अपना शारीरिक सन्तुलन बनाये रखने में सक्षम होते हैं। पाँचवीं अवस्था में हम लम्बे समय तक किसी एक आसन में बैठ सकते हैं। इस अवधि में शरीर पूर्णत: स्थिर, गतिहीन और आरामदायक अवस्था में रहता है। उसमें किसी प्रकार की पीड़ा या असुविधा का अनुभव नहीं होता। इस प्रकार आसनों के अभ्यास की ये पाँच अवस्थायें होती हैं।

प्राय: सभी टीकाकारों की मान्यता है कि महर्षि पतंजलि के आसन सम्बन्धी कथन– *स्थिरसुखमासनम्* का संबंध केवल ध्यान के आसनों से है। किन्तु यह मान्यता सही नहीं है। उनका कथन आसनों के अभ्यास के समय प्राप्त होने वाली शारीरिक नम्यता, अनुकूलता और आराम की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बद्ध है। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण दिये जा सकते हैं कि आसन केवल ध्यानात्मक नहीं होते, जैसा कि परम्परागत साहित्य में उल्लिखित है।

अनेक योग उपनिषदों में मयूरासन जैसे विभिन्न आसनों की चर्चा मिलती है जिनमें शरीर स्वयं के साथ पूर्ण सामंजस्यपूर्ण अवस्था में रहता है। मयूरासन कोई सरल आसन नहीं है। इसमें वक्ष के संकुचन, मध्यपट के क्षेत्र में पड़नेवाले दबाव, कलाई पर शरीर का भार पड़ने तथा शरीर को सन्तुलित करने के प्रयास के कारण बहुत शारीरिक तनाव और असुविधा का अनुभव होता है। योग उपनिषदों में ऐसे आसनों के उल्लेख का स्पष्ट अर्थ यह है कि इनका अभिप्राय केवल ध्यानात्मक आसनों से ही नहीं, बल्कि अन्य आसनों से भी है।

उपनिषदों में वृश्चिकासन, सूर्य नमस्कार तथा वशिष्ठासन जैसे आसनों का भी वर्णन मिलता है। अन्तिम आसन महर्षि वशिष्ठ की देन है जो इस आसन में प्रतिदिन तीन घंटे तक रहा करते थे। इन आसनों को श्रेष्ठतम माना जाता है, इनमें सम्पूर्ण शरीर सामंजस्यपूर्ण एवं आरामदायक अवस्था में रहता है, किसी भी अंग में कोई असुविधा या तनाव नहीं रहता। अभ्यास के समय मन की एकाग्रता बनी रहती है तथा आनन्द का अनुभव होता है।

योग उपनिषदों में जिन विभिन्न आसनों का वर्णन किया गया है उन पर विचार करने से पता चलता है कि उपरोक्त पाँच अवस्थाओं से गुजरते हुए हमारा शरीर सामान्य अवस्था से प्रारम्भ करके अति समस्वरित और सन्तुलित अवस्था को प्राप्त करता है। इसलिए हम किसी भी आसन का अभ्यास क्यों न करें, चाहे वह अति गत्यात्मक ही क्यों न हो जिसमें हम अपने शरीर के प्रत्येक स्नायु, तन्त्रिका और मांसपेशी में खिंचाव, दबाव और तनाव उत्पन्न कर रहे हैं, उन सभी अवस्थाओं में सजगता, सन्तुलन, आराम और निश्चलता बनी रहनी चाहिए।

शरीर पर आसनों का प्रभाव

शरीर पर आसनों का बहुत गहरा और सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है। बैठने की गलत स्थिति के कारण हम प्राय: हर दिन किसी-न-किसी प्रकार के दर्द का अनुभव करते हैं। जो लोग कुर्सी-मेज पर बैठकर लम्बे समय तक कार्य करते हैं, उनकी पीठ और कंधे प्राय: कड़े हो जाते हैं। बाद में यह पीठ एवं जोड़ों के दर्द का कारण हो जाता है और अन्तत: चिरकालिक स्पॉन्डिलाइटिस में परिणत हो जाता है।

यह एक अति सामान्य परिस्थिति है जिसका सामना हमें प्रतिदिन करना पड़ता है। अनेक बार रात्रि में सोने के समय गलत शारीरिक संस्थिति के कारण सुबह उठने पर हम शारीरिक कड़ेपन का अनुभव करते हैं। प्राय: बैठने की गलत स्थिति के कारण मेरुदण्ड में दर्द होने लगता है तथा हमें खड़ा होकर अपने शरीर को तानना पड़ता है। कभी-कभी झुककर बैठने के कारण हम गर्दन और कन्धों में दर्द का अनुभव करते हैं, तथा पुन: बेहतर अनुभव करने के लिए अपनी छाती का विस्तार करते हैं।

कुछ शारीरिक स्थितियों में, जिन पर हमारा स्वैच्छिक नियन्त्रण नहीं है, प्राणों को जाग्रत करना निश्चय ही सम्भव नहीं है। हमेशा गलत शारीरिक स्थिति में रहने के कारण निरन्तर दर्द और पीड़ा होने लगती है। ऐसी अवस्था में नाड़ी के अवरोधों को दूर करना असम्भव हो जाता है। अत: योग का प्रथम निर्देश यह है कि हम जिन शारीरिक संस्थितियों का प्रतिदिन उपयोग करते हैं उनका अवलोकन करें तथा उन्हें ठीक करें। जब भी आप बैठते हैं तो ठीक से बैठें, यही आसन है। पद्मासन में बैठकर, सिर को सीधा रखते हुए सूर्य को प्रणाम करना—यही आसन के अभ्यास का एकमात्र तरीका नहीं है। ये स्थितियाँ तो शरीर को सीधा रखने के उपाय हैं। इनके अभ्यास से एक विशेष शारीरिक स्थिति उत्पन्न होती है जिसमें सामंजस्य का अनुभव होता है।

यदि आसनों का प्रभाव उनके अभ्यास के समय तक ही रहे तो उनकी उपयोगिता अपूर्ण रहेगी। ऐसा हो सकता है कि पद्मासन में बैठकर ध्यान करते समय हमारे प्राण सक्रिय हो जायें। लेकिन जब हम पद्मासन में न हों तथा हमारी शारीरिक स्थिति पूर्णत: गलत हो तो उस अवस्था में क्या होगा? उस समय पद्मासन की अवधि में प्राप्त उद्दीपन और जागृति समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की परिस्थितियों के कारण हम यह मानने लगे हैं कि आसन निश्चय ही ध्यानात्मक स्थितियाँ नहीं हैं।

जिन विभिन्न शारीरिक संस्थितियों तथा गतियों के द्वारा हम कंकाली, मांसपेशीय, स्नायवीय, ग्रन्थीय, श्वसन एवं पाचन तन्त्रों में समन्वय तथा सामंजस्य स्थापित करते है उन्हें ही आसन कहते हैं। इन अभ्यासों के द्वारा शारीरिक सामंजस्य की प्राप्ति ही आसनों की पराकाष्ठा है, अथवा उनकी अन्तिम परिणति है। इस अन्तिम अवस्था की प्राप्ति हो जाने पर हमारी तथा हमारे शरीर की कार्य-क्षमता असीम हो जाती है। समुचित रूप से सम्पादित किये जाने पर वशिष्ठासन जैसे

कठिन, सूर्य नमस्कार जैसे गत्यात्मक तथा पवनमुक्तासन जैसे अति साधारण आसन भी ध्यानात्मक अभ्यास हो जाते हैं। इस प्रकार आसन वैसी स्थितियाँ या गतियाँ हैं जिनके द्वारा पूर्ण शारीरिक समन्वय प्राप्त किया जा सकता है।

आसन के आयाम

योग ग्रन्थों में कहा गया है कि आसनों के अभ्यास से तीनों आयामों का ज्ञान होता है। तीन आयामों को किसी भी अर्थ में समझा जा सकता है, जैसे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक; स्थूल, सूक्ष्म, कारण; जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि। इन आयामों के विभिन्न विवरणों पर विचार करने के बाद हम कह सकते हैं कि इन्हें तीन कोशों– अन्नमय, मनोमय और प्राणमय के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। भौतिक शरीर का अनुभव इन तीन आयामों तक ही सीमित है तथा आसनों की प्रकृति भी भौतिक है।

अन्नमय कोश–अन्नमय कोश शारीरिक पहलू है। इसके अन्तर्गत अस्थियाँ, मांसपेशियाँ, तन्त्रिकाएँ, रक्तसंचार तथा फेफड़े, हृदय, गुर्दे, यकृत और अग्न्याशय जैसे आन्तरिक अंग आते हैं। शारीरिक प्रकृति की समस्त चीजें अन्नमय कोश के अन्तर्गत आती हैं। आसन का अभ्यास कभी भी अचेतन या यान्त्रिक नहीं होना चाहिये। इसे सदैव सजगता और एकाग्रता के साथ किया जाना चाहिये। प्रत्येक आसन के अभ्यास के लिए योगियों ने बताया है कि हमें किस बिन्दु पर एकाग्रता करनी चाहिए तथा किस चक्र या किस प्रकार की संवेदना और भावना के प्रति सजग होना चाहिए। हमें अनुभवों के एक विस्तृत क्षेत्र के प्रति सजग तथा उनका द्रष्टा होना चाहिए।

सजगता की यह क्षमता शरीर के प्रति हमारी संवेदनशीलता को बढ़ा देगी। अत: आसनों के अभ्यास द्वारा सर्वप्रथम हमें अपने शरीर का अवलोकन करना

चाहिए—हमारे शरीर को क्या चाहिए, मांसपेशीय तन्त्र के लिए किस प्रकार का खिंचाव या ढीलापन आवश्यक है, किस तन्त्र में किस प्रकार का तनाव है, क्या शरीर के किसी अंग में किसी प्रकार की अशान्ति या बेचैनी का अनुभव हो रहा है; आराम, निश्चलता और शांति की अवस्था में किस प्रकार का शारीरिक अनुभव हो रहा है, आदि। शरीर के प्रति यह गहरी सजगता आसनों के अभ्यास से प्राप्त होनेवाला प्रथम लाभ है। इसकी प्राप्ति अन्नमय कोश के स्तर पर होती है।

मनोमय कोश—मनोमय कोश मानसिक पहलू है। इस कोश के स्तर पर मन को शान्त करने के लिए किया जानेवाला प्रयास अति महत्त्वपूर्ण है। शारीरिक गति के साथ-साथ हम सजगता का संयोग तथा एकाग्रता का प्रयास करते हैं। बाहर की ओर खींचनेवाले विक्षेपों से मन को निवर्तित करके उसे हम शारीरिक स्थिति पर एकाग्र करते हैं और इस प्रकार 'आसन प्रत्याहार' का अभ्यास करने का प्रयास करते हैं। यह 'आसन प्रत्याहार' मनोमय कोश का अनुभव है। इसमें व्यक्ति आसनों के अभ्यास द्वारा मन की गति, प्रकृति, गुणों, मजबूतियों और कमजोरियों को समझने लगता है।

प्राणमय कोश—प्राणमय कोश प्राणशक्ति से सम्बन्धित पहलू है। जब शरीर और मन एक-दूसरे से समस्वरित होते हैं तो प्राणमय कोश निश्चित रूप से प्रभावित होता है। ऐसा इसलिए होता है कि प्राणशक्ति मांसपेशीय कड़ापन तथा थकावट जैसे शारीरिक अनुभवों से अत्यधिक सम्बद्ध रहती है। भौतिक शरीर में कष्ट, शक्ति की कमी या बीमारी के रूप में विभिन्न प्राणिक अवरोधों का अनुभव होता है। विक्षिप्त मन:स्थिति में व्यक्ति इस प्राणिक शक्ति के प्रति न तो सजग हो पाता है और न इसे सही दिशा में निर्देशित कर सकता है जहाँ यह सूक्ष्म और सुषुप्त शक्तियों की जागृति का उपकरण बन सके। प्राण के प्रति सजगता हेतु तीव्र मानसिक संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है। यदि मन पर्याप्त संवेदनशील नहीं होगा तो प्राण का अनुभव नहीं हो सकता। एकाग्रता और सजगता के बिना प्राण का अनुभव कदापि नहीं होगा।

आसनों के अभ्यास के द्वारा प्राणमय कोश को जाग्रत किया जाता है। प्राणमय कोश का ज्ञान अभ्यासी को प्राणायाम की तकनीक के लिए तैयार करता है। प्राणिक क्षेत्र से प्राणायाम का विशिष्ट सम्बन्ध होता है। इस प्रकार आसन प्राणायाम के अभ्यास के लिये एक सोपान बन जाता है। आसन का लक्ष्य प्राणिक अवरोधों को दूर करना तथा सम्पूर्ण शरीर में प्राण के प्रवाह को नियमित करना है। प्राणायाम का लक्ष्य प्राणों को जाग्रत करना है। यहाँ आसन के क्षेत्र की सीमा समाप्त हो जाती है। योग शास्त्रों में कहा गया है कि आसन में पूर्णता की प्राप्ति होने से तीनों आयामों का ज्ञान प्रकट होता है। इस कथन का तात्पर्य उपरोक्त तीनों कोशों के अनुभव से है। इस शारीरिक क्षेत्र से परे, इससे आगे की यात्रा जारी रखने के लिए प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा की तकनीकों की आवश्यकता होती है।

—'योग दर्शन' से उद्धृत

सत्यम् वाणी

गतांक से आगे

हम हिमालय को जितना पवित्र मानते हैं, क्या चीन भी उसे उतना ही पवित्र मानता है? आखिर हिमालय से जितनी औषधियाँ, वन, नदियाँ और अन्य लाभ हम लोगों को मिलते हैं, वे उनको भी मिलते होंगे?

नहीं, ऐसी बात नहीं है। हम तिब्बत गये हैं, सब जगह घूमे हैं। हिमालय का उधर जो हिस्सा है, वह सूखाग्रस्त है। वहाँ तो मॉनसून पहुँचता ही नहीं है। हम लोग हिमालय को पवित्र क्यों मानते हैं? पवित्रता की परिभाषा उसके उपयोग से लगती है। वह पवित्र इसलिए है कि वहाँ ऋषि-मुनि रहते हैं। ऋषि-मुनि क्यों रहते हैं? वह तुम जानते हो।

सबसे बड़ी चीज यह है कि हिमालय ने हिन्दुस्तान को सींचा है। सारी नदियाँ वहीं से आई हैं। चाहे सिन्धु हो, गंगा हो या यमुना हो, सब हिमालय से ही आई हैं। हिमालय रत्नों की खान है, वनस्पतियों का भण्डार है, इसमें भी कोई शक नहीं है, मगर यदि गंगा, यमुना, सिंधु नहीं होतीं तो हिन्दुस्तान सऊदी अरब की तरह बंजर होता।

हिन्दुस्तान में पवित्रता का अर्थ धार्मिक और लौकिक, दोनों दृष्टियों से लगाते हैं। फिर ऋषि-मुनि हिमालय में क्यों रहे? इसलिए कि वहाँ ठण्ढ थी और ठण्ढ में वे अपना जप-ध्यान कर सकते थे, एकांत में रह सकते थे। इसलिए वह पवित्र है।

लोगों ने वहाँ पूजा-पाठ के लिए सुरक्षित स्थानों पर बड़े-बड़े मन्दिर बनाये ताकि उनको कोई तोड़ न सके।

मगर चीन को हिमालय से क्या मिलता है? कुछ नहीं। मॉनसून जाता है, हिमालय से टकराकर वापस आता है। उस तरफ तो केवल सूखे जंगल, सूखे पहाड़, सूखी चट्टानें मिलेंगी।

वैसे चीन ने दुनिया को बहुत-सी चीजें दी हैं। बारूद का खोजकर्ता चीन है। कागज भी वहीं बना। चीन का भारत से बौद्धकाल से सम्बन्ध रहा है। यहाँ के आचार्य वहाँ रहते थे। यहाँ से बौद्ध धर्म भी गया और संस्कृति भी। जापान को भी बौद्ध धर्म चीन से मिला है, हिन्दुस्तान से नहीं। पहले वह चीन गया, चीन से कोरिया, फिर कोरिया से जापान गया। चीन और जापान की पहले पटती नहीं थी। जब उन्होंने राजनैतिक सम्बन्ध सुधारे, तब फिर जापान ने चीन में जाकर संस्कृत, पाली और बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। चीन से फाह्यान और ह्वेनसांग जैसे बहुत-से यात्री भारत आए हैं, जापान से नहीं आए।

चीन में अभी भी संस्कृत है?

नहीं है, ऐसा बोलना चाहिये, क्योंकि भाषा राजनीति का एक प्रमुख आधार है। राजनीति में जो बहुत बड़ी भूमिका निभाती है, वह होती है भाषा। जब संस्कृत भाषा यहाँ से वहाँ गई, इसका मतलब राजनीति यहाँ से वहाँ गई। भाषा राजनीति की सिपाही होती है। इसी तरह धर्म भी राजनीति का सिपाही होता है। राजा हर्षवर्द्धन के बाद भारत और चीन के सम्बन्ध बिगड़े। उनकी बहन राज्यश्री का अपहरण हुआ, फिर हर्षवर्द्धन ने हूणों से युद्ध किया। ये हूण चीन से काराकोरम के रास्ते भारत में घुसे थे। खैर, उसको तो रोक दिया गया और राज्यश्री को फिर से प्राप्त कर लिया गया, किन्तु हर्षवर्द्धन ने अपनी राजधानी कन्नौज में चीन के राजदूतों से मिलने के लिए मना कर दिया। चीन के राजदूतों को राजसभा में इंतजार करवाया तो वे लोग गुस्सा हो गये और चले गये।

उसके बाद चीन और हिन्दुस्तान का राजनैतिक सम्बन्ध शताब्दियों तक टूटा रहा। इसके बाद तिब्बत को कई सालों तक जो स्वतंत्र रखा गया, उसका मुख्य श्रेय या दोष जो भी है, वह भारत को जाता है। सैकड़ों वर्षों तक लामा तिब्बत एक स्वतंत्र राष्ट्र रहा जो चीन के हाल के आक्रमण के बाद चीन का अंग हो गया। इसका दोष भी भारत को जाता है। तिब्बत को स्वतंत्र रखने का श्रेय भारत को है। कई शताब्दियों तक तिब्बत बिल्कुल अलग रहा। उस समय यह समझौता हुआ था कि जो भी दलाई लामा होगा उसका चुनाव चीन से होगा। जितने भी दलाई लामा हुए हैं, ये मूल रूप से तिब्बती नहीं, चीनी हैं, चाहे वे किसी भी प्रांत के हों। यह राजनीति है, समझने की चीज है। लोग इसे मुँह खोलकर बोलते नहीं हैं। यह एक राजनैतिक संधि है।

ऐसा ही कश्मीर के सम्बन्ध में है। कश्मीर की बहुसंख्या मुसलमान और राजा शुद्ध हिन्दू, वैदिक धर्म मानने वाला है। यह एक ऐसी राजनैतिक संधि है जो अन्दर होती है, पर बाहर से पता नहीं चलता है। इसका जनता से कोई खास मतलब नहीं होता। तिब्बत का देश तिब्बतवालों का रहा है, मगर उनका जो गुरु था, प्रशासक था, वह चीनी था। चुनाव की जो व्यवस्था है वह सब ठीक है, लेकिन सच्ची बात यह है कि वह चीनी है।

तब तो दलाई लामा के पुनर्जन्म की बात सच्ची नहीं होगी?

यहाँ पर अभी पुर्नजन्म की बात नहीं कही जा रही है। हम यह नहीं कहते कि पुनर्जन्म की बात गलत है। ये सब बातें कि लामा ने फलानी जगह पर जन्म लिया, उसे माला याद आ गई, जूता याद आ गया वगैरह अपनी जगह पर ठीक हैं, लेकिन यह राजनैतिक बात भी सही है कि जितने भी दलाई लामा हुए वे चीनी थे।

राजनीति में जब दो तंत्रों में आपसी संधि होती है, तब एक ऊपर की संधि होती है और एक अन्दर की। अन्दर की संधि कुछ कूटनीतिज्ञों को छोड़कर किसी को भी पता नहीं चलती। आज भी भारत-पाकिस्तान की राजनीति में अन्दर की चीजें कुछ और हैं, बाहर की कुछ और। हम तो उस खानदान में जन्मे हैं, जिसके खून में राजनीति होती है। हम तो इन सब चीजों को जल्दी से पहचान लेते हैं।

रुमाल उड़ेगा, चार दिशाओं में जायेगा, पाँच अफसर जायेंगे, निर्णय लेंगे, बच्चे को ले आयेंगे, वह दलाई लामा का पुनरवतार घोषित होगा—यह सब होगा मगर वह आदमी होना चाहिये चीनी। सारे लामा चीनी रहे हैं, क्योंकि कई सौ साल

पहले चीन और भारत के सम्राटों के बीच एक समझौता हुआ था कि तिब्बत को एक अलग, स्वतंत्र राष्ट्र होना चाहिए, क्योंकि वे लोग बौद्ध धर्म के महायान मत में विश्वास करते थे। वे महायान दर्शन के अनुसार जीवन व्यतीत कर सकें, यह तभी संभव है जब उनका अपना राष्ट्र हो, क्योंकि चीन का दर्शन भिन्न है। उनकी सरकार, नियम, कानून, सब भिन्न है। भारत तिब्बत को एक महायान राष्ट्र के रूप में देखना चाहता था। चीन के राजा भारत के शासकों के साथ रजामंद तो हो गये, लेकिन उन्होंने कहा कि तिब्बत का गुरु या मुख्य व्यक्ति चीन से होगा। भारतीयों ने कहा, 'ठीक है।' तो बात ऐसी है। इसी तरह से कश्मीर में है।

अब आधुनिक युग में पंचशील के कारण भारत हस्तक्षेप नहीं करता, और इसलिए तिब्बत चीन का हिस्सा बन गया। यह हमारे लिये बहुत अच्छी चीज नहीं है। इससे भारत को एक खतरा और हो सकता है। वह है गंगा और सिंधु नदियों का उद्‌गम। तिब्बत में मानसरोवर झील है जो गंगा का उद्‌गम है। उसी के बगल में एक तालाब है, राक्षस-ताल। वहाँ से सिंधु का उद्‌गम हुआ है। यह बात खुल जायेगी तो हिन्दुस्तान घाटे में रहेगा। उसे अपनी राजनैतिक भूल के लिये भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार अगर नदी तुम्हारे यहाँ प्रकट होती है, तो उसपर तुम्हारा अधिकार होता है। तुम उसके निर्णायक होते हो। हमने करीब चालीस साल पहले स्वामी प्रणवानन्द जी की एक पुस्तक पढ़ी थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उसे प्रकाशित किया था। वे हर साल कैलास-मानसरोवर जाते थे। साथ में रबर की नाँव भी ले जाते थे। मानसरोवर के बीच जाकर जगह-जगह से पानी का, पत्थर का नमूना लाते थे, फिर कलकत्ता में आकर परीक्षण करते थे। गंगा और मानसरोवर के जल में समानता है, इस पर उन्होंने पुस्तक भी लिखी है, 'कैलास-मानसरोवर।'

जब चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया, तब कैलास जाने का रास्ता बन्द किया गया। मैं उसी तरफ का हूँ, अल्मोड़ा के पहाड़ों का रहने वाला हूँ। उस समय कैलास जाने के लिये एक रास्ता अल्मोड़ा से था, दूसरा रास्ता पिथौरागढ़ से होते हुए जाता था। आगे जाकर दोनों एक ही हो जाते हैं। जब हम गये थे तब पिथौरागढ़ से गये थे। हम साधु बनने के बाद गये थे, पहले नहीं। उस समय बहुत-से लोग कैलास-मानसरोवर की तीर्थयात्रा पर जाते थे। पहला झंझट तब शुरू हुआ जब दलाई लामा भाग कर भारत आए और हिन्दुस्तान की सरकार ने उनको शरण दी। दूसरा झंझट हुआ जब चीन और भारत का सीमा को लेकर युद्ध हुआ। उसके बाद कैलास-मानसरोवर जाना बन्द हो गया था।

अभी लोग साल में एक बार जा पाते हैं। खैर, हिन्दुस्तान की सरकार तो ज्यादा जोर नहीं देती है, वरना असल में देखा जाए तो जैसे पाकिस्तान में सिक्खों का बड़ा तीर्थ ननकाना साहिब है, वैसे हिन्दुओं का सबसे बड़ा तीर्थ कैलास है। धार्मिक

स्थानों के प्रति लोगों की जो भावना होती है, वह बहुत गहरी होती है। मगर भारत सरकार धर्म-निरपेक्ष है, ज्यादा बोलती नहीं है।

गंगोत्री से जल लाते समय नर्मदा होते हुए जाना अशुभ क्यों माना जाता है? ऐसा ही कुछ निषेध मगध के बारे में भी आता है।

अपने यहाँ कुछ तो आदिकालीन परम्पराएँ होती हैं और कुछ स्थानीय परम्पराएँ। उनका शास्त्रों से कोई मतलब नहीं। हाँ, कर्मनाशा नदी के बारे में हमारे शास्त्रों में कई स्थानों पर बुराई की गई है, और कई जगह पर मगध की भी बुराई की गई है। मगर वे जितनी चीजें हैं तत्कालीन हैं। उनके पीछे मगध के सोचने का तरीका हो सकता है। आखिर मगध तो बौद्धों का घर रहा है और जैनों का भी।

आज बौद्धों, जैनों और हिन्दुओं में कोई टक्कर नहीं है, मगर किसी जमाने में थी। यहाँ तक कि चन्द्रगुप्त के समय में भी टक्कर रही है। चाणक्य पाटलीपुत्र छोड़कर पढ़ने के लिए तक्षशिला क्यों गए जबकि पाटलीपुत्र में अच्छी संस्कृत शिक्षा थी, वहाँ बड़े विद्वान् थे? इसलिए कि यहाँ का राजा महापद्म नन्द, बौद्ध लोगों को बहुत आश्रय देता था। चन्द्रगुप्त मौर्य भी अपने राज्य काल के बाद जैन धर्म अंगीकार करके दक्षिण भारत में कर्णाटक चला गया था। चन्द्रगुप्त का जैन धर्म की तरफ बहुत रुझान था, उसके पौत्र अशोक का बौद्ध धर्म की तरफ रुझान बाद में आया। उस समय बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्मावलम्बियों में काफी राजनैतिक टक्कर थी। हो सकता है कि उस टक्कर की वजह से तीर्थयात्रियों ने मगध का बहिष्कार किया हो।

मगध के साथ यह जो सम्बन्ध है कि कर्मनाशा नदी पार नहीं करेंगे, इसका कारण स्थानीय है। इसका कोई शास्त्रीय या पौराणिक कारण नहीं है। परम्परा यह है कि जो गंगोत्री से जल लाते, वे उत्तराखण्ड से होते हुए, मिथिला से होते हुए, वैद्यनाथ धाम के आसपास होते हुए, उड़ीसा होते हुए जाते थे। उसका एक मुख्य कारण था। बहुत पुरानी बात नहीं कह रहा हूँ, सौ साल पहले की बात कह रहा हूँ। आज से सौ साल पहले मध्यप्रदेश निर्जन देश था। किसी तीर्थयात्री को जब एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ भेजना हो, तो उसको वही मार्ग बताना चाहिये जो जनसंकुलित हो।

गंगोत्री से उतरे तो ब्रजभूमि आए, अवध आए, मिथिला आए, फिर इसके बाद भोजपुर आए, वैद्यनाथ धाम से निकले, फिर उड़ीसा गये, वहाँ से आंध्र गये, फिर रामेश्वरम् पहुँच गये। यहाँ दो चीजें हैं। एक तो यह मार्ग जनसंकुलित है। दूसरी चीज है कि तीर्थयात्री कितनी नदियाँ पार करेगा? उस समय नदी पार करने का इन्तजाम कहाँ था? जब यह प्रथा बनी कि गंगोत्री का गंगाजल रामेश्वरम् में चढ़ाना पुण्यकारी है, उस समय लोगों ने यह भी सोचा कि किस-किस रास्ते से नहीं जाना चाहिये। ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि मगध एक खराब देश है या कर्मनाशा बुरी नदी है या नर्मदा कोई अपवित्र नदी है। नर्मदा जहाँ से गुजरती है, वहाँ अभी भी ऐसे घने जंगल हैं जहाँ आदमी पैदल नहीं जा सकता। पेड़ से पेड़ टकराते हैं। मध्यप्रदेश तो वन-संकुलित देश है। वहाँ बहुत घने जंगल हैं, इसलिये लोग उस रास्ते से जाने से कतराते हैं। सुविधा की दृष्टि से लोगों को एक मार्ग से भेजा और दूसरे मार्ग से जाने को मना किया, यही मानना पड़ेगा।

नर्मदा की परिक्रमा का इतना महत्त्व क्यों है?

हिन्दुस्तान में कुछ सभ्यताएँ मिलकर एक सभ्यता बनी है जिसे वैदिक सभ्यता कहते हैं। पहली सभ्यता है सिंधु घाटी की सभ्यता, दूसरी है गंगा घाटी की सभ्यता, तीसरी है ब्रह्मपुत्र घाटी की सभ्यता, चौथी है नर्मदा घाटी की सभ्यता और पाँचवी है कावेरी क्षेत्र की सभ्यता। इन पाँचों से मिलकर वैदिक सभ्यता बनी है और इन्होंने वेदों को स्वीकार किया है। इनके यहाँ पूजा-पाठ, शादी-विवाह, अंत्येष्टि इत्यादि जो भी होता है, उसका आधार वेद है, बाईबिल या कुरान नहीं।

इनमें से सिंधु घाटी की सभ्यता बड़ी गतिशील सभ्यता रही है। राजनीति, शिल्प-कौशल, व्यापार, रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, देश-विदेश आना-जाना, ये एक गतिशील संस्कृति के लक्षण हैं, जो तुम आज विदेशियों में देखते हो।

गंगा घाटी की सभ्यता ज्ञान की सभ्यता रही है, वेद, पुराण, उपनिषद, मंत्र, महाभारत, रामायण और अध्यात्म की सभ्यता रही है। सिंधु घाटी की सभ्यता एकदम नागरिक सभ्यता है, उसमें रुपया-पैसा कमाओ, लड़ाई-झगड़ा करो, यह

राजा बदलो, वह राजा बदलो, जबकि गंगा घाटी की सभ्यता का इन सबसे कोई मतलब नहीं है, वह पूरी तरह आध्यात्मिक है।

ब्रह्मपुत्र घाटी से तंत्र शास्त्र और कामाख्या जैसी देवियों की उपासना मिली। इसका प्रभाव बंगाल और उड़ीसा तक रहा। नर्मदा की घाटी योग, तंत्र-मंत्र और जादू-टोना से संबंधित है, जिसे आप रहस्यात्मक संस्कृति कहते हैं, और कावेरी नदी की सभ्यता संगीत, साहित्य, नृत्यकला और शिल्पकला से जुड़ी है। खाली पैर हिला देना या कमर मटका देना नृत्य नहीं होता। नृत्य एक भाषा होती है, इससे तुम भाव व्यक्त कर सकते हो। नृत्य मुद्राओं की भाषा है और उस पर पुस्तकें हैं। भरतनाट्यम् पर संस्कृत में एक पुस्तक है, जिसमें नृत्य की भंगिमाओं, गतियों, मुद्राओं, लय, ताल इत्यादि सबको संस्कृत भाषा में समझाया है।

उसी तरह से शिल्पकला है। दक्षिण भारत में कितने विशाल मंदिर हैं! दक्षिण भारत का मन्दिर एक शहर की तरह होता है। कुम्भकोणम् मन्दिर के बारे में जानते हो? यहाँ कुम्भ का तात्पर्य कुम्भ राशि से है और कोण का मतलब तो तुम जानते ही हो। जब कुम्भ का सूर्य सिंहस्थ होता है, केवल उसी समय उस मन्दिर की छाया मन्दिर की परिक्रमा से बाहर गिरती है, अन्यथा नहीं। वह महाविशाल मन्दिर है। उसकी ऊँचाई, चौड़ाई और लम्बाई में ऐसा अनुपात है कि सूर्य पूर्व से पश्चिम में ढल जाता है, मगर छाया परिक्रमा से बाहर नहीं गिरती, केवल कुम्भ राशि के समय गिरती है। ऐसा बारह साल में एक बार होता है और उस दिन वहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसे कहते हैं महामखम्। मख का मतलब यज्ञ होता है। उस समय लाखों पण्डित, विद्वान्, आचार्य, शास्त्री, महात्मा, तीर्थयात्री, चारों वर्णों के लोग आते हैं और उस यज्ञ में भाग लेते हैं।

कावेरी सभ्यता ने कुम्भकोणम् जैसे कई जबरदस्त मन्दिर बनाए हैं। कितने वैज्ञानिक ढंग से बनाया है! उसी तरह से रामेश्वरम् मन्दिर, मदुरै में मीनाक्षी मन्दिर और शबरी मलई मंदिर हैं। सब एक-से-बढ़कर-एक!

इन पाँच सभ्यताओं ने वेदों में जो लिखा है, उन आदर्शों को स्वीकार किया। इन लोगों के धर्म, तीर्थ-पर्व, पंचांग, सोलह संस्कार, शादी-विवाह आदि सभी वेदों के अन्तर्गत होते हैं। इन पाँचों सभ्यताएँ में से नर्मदा की सभ्यता मूलत: योग से सम्बन्ध रखती है। साकार उपासना वाले लोग भगवान को मूर्तियों या तीर्थों में यानि बाहर मानते हैं, पूजा करते हैं, मगर योग वाले कहते हैं कि यह सब अन्दर है। इस प्रकार नर्मदा सभ्यता अन्तर-देवता की उपासना लेकर आई, कावेरी की सभ्यता साहित्य, संगीत, कला के रूप में आई, ब्रह्मपुत्र घाटी की सभ्यता तंत्र-मार्ग को लाई और गंगा की सभ्यता शास्त्र, वेद, पुराण के रूप में आई।

इसलिये जो नर्मदा की परिक्रमा करते हैं, उनका नियम होता है कि उन्हें साधु की तरह फक्कड़ होकर रहना होगा, भिक्षा माँगकर खाना होगा। वे लोग गाँव में रहते

हैं, दो-चार घरों में चले जाते हैं और खाना ले लेते हैं। आजकल तो जेब में पैसा रखते हैं, मगर पहले ऐसा नियम नहीं था। पहले के जमाने में नर्मदा की परिक्रमा केवल साधु ही किया करता था या कर सकता था, दूसरा व्यक्ति नहीं करता था। जैसे ब्रज की परिक्रमा कोई भी कर लेता है, गृहस्थ भी कर सकता है, मगर नर्मदा की परिक्रमा केवल फक्कड़ के लिये थी, और उसे वही कर पाते थे।

गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी के बीच सामंजस्य कैसे रखा जा सकता है?

परिवार में स्त्री और पुरुष, एक व्यक्ति का नहीं, दो व्यक्तियों का नाम होता है। दो व्यक्तियों के दो मन होते हैं और दो मन कभी एक सरीखे नहीं हो सकते। पति और पत्नी का मन अलग-अलग होता ही है। एक मन हो गया तो घर-गृहस्थी नहीं चल सकती। घर-गृहस्थी चलने के लिये दो पहियों का अलग रहना जरूरी है। यह पक्की बात है।

पुरुष और स्त्री में विभिन्न गुण होते हैं और दोनों के गुणों के मेल से ही परिवार चलता है। अगर घर में स्त्री न बोल सके तो फिर उसका परिवार से क्या मतलब? केवल पति के बोलने का क्या महत्त्व? पत्नी बोले तो बदतमीज है, यह रवैया ठीक नहीं। आखिर बुद्धिमानी का ठेका किसी एक ने तो नहीं ले रखा। स्त्री और पुरुष, दोनों के अपने-अपने विशेष गुण होते हैं।

स्त्री की सबसे बड़ी विशेषता है विवेक, जबकि पुरुष में विवेक की कमी होती है। शील स्त्री के लिये स्वाभाविक है, पुरुष के लिये स्वाभाविक नहीं है। यह स्त्री का बहुत बड़ा गुण है। परिवार को चलाने के लिये शील बहुत आवश्यक है। तीसरी चीज है क्वालिटी की परख। आप मर्दों और औरतों के कपड़े देख लीजिये, कपड़ों की किस्म से ही पता चल जाता है। अगर मर्द को घर में खाना बनाना पड़े तो दाल-चावल से ही काम चलायेगा, लेकिन घर की स्त्री कितने प्रकार के पकवान बना लेती है। व्यवसाय में भी हमने देखा है। जिस-जिस व्यापार क्षेत्र में औरतें हैं, उसकी क्वालिटी, उसकी गुणवत्ता बहुत अच्छी है। स्त्रियाँ गुणवत्ता पर बहुत ध्यान देती हैं, जबकि आदमी बिक्री पर अधिक ध्यान देता है। आदमी देखता है कि ज्यादा बिक्री कैसे हो, औरत सोचती है कि अच्छा माल कैसे बने। विवेक, शील और गुणवत्ता की परख—ये जो तीन गुण महिलाओं में हैं, किसी भी व्यक्ति के लिये क्या यह कम योग्यता है?

जब समाज में गुण्डे-बदमाश बहुत हो जाते हैं और राजा सुरक्षा नहीं दे पाता, उस समय स्त्री अबला बन जाती है। स्त्री हमारे समाज की बहुमूल्य सदस्य है। उसे घर की चहारदीवारी में बन्द मत करो, बल्कि उसे योग्य बनाओ, सशक्त बनाओ और सुशील भी बनाओ। जरूरी तो नहीं कि सशक्त दु:शील बने।

—15 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

राजयोग प्रशिक्षण मॉड्यूल 1

नवम्बर 2016 में गंगा दर्शन में राजयोग प्रशिक्षण का प्रथम मॉड्यूल स्वामी निरंजनानन्द जी के मार्गदर्शन में संचालित किया गया। राजयोग के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बतलाया कि राजयोग का लक्ष्य पातंजल योगसूत्रों के द्वितीय सूत्र में *चित्तवृत्तिनिरोध* के रूप में स्पष्टतया इंगित किया गया है। राजयोग का उद्देश्य मात्र ध्यान नहीं, बल्कि मन के सभी पक्षों को सुधारना और सकारात्मक बनाना है।

हठयोग की तैयारी के बिना राजयोग सिद्ध नहीं किया जा सकता। शरीर में यह क्षमता आ जानी चाहिए कि किसी स्थिति में लम्बे समय तक सुखपूर्वक बैठा जा सके। इसलिए राजयोग में आसन की परिभाषा *स्थिरसुखमासनम्* है। स्वामीजी ने इस बात पर जोर दिया कि योग साधकों को अपनी शारीरिक सीमाओं का धीरे-धीरे अतिक्रमण कर अपने शरीर को इस लक्ष्य-प्राप्ति हेतु प्रशिक्षित करना होगा।

राजयोग के दो मुख्य अंग प्रत्याहार और धारणा हैं। इन्हीं अभ्यासों पर साधक को परिश्रम करना है, इन्हीं अवस्थाओं को प्राप्त करना है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम सहयोगी अंग हैं जो प्रत्याहार और धारणा की अवस्थाओं की प्राप्ति में सहायक होते हैं।

राजयोग की शिक्षाएँ, विधियाँ और अनुशासन दो लक्ष्य सिद्ध करते हैं– विक्षिप्त मन की हलचल को शांत करना और चित्त में जमी संस्कार राशि को हटाना। मन से संस्कारों को हटाने के बाद यह भी आवश्यक है कि उस रिक्त स्थान को सकारात्मक गुणों और प्रवृत्तियों से आपूरित किया जाए। यहाँ प्रतिपक्ष

भावना के अभ्यास द्वारा हम सकारात्मकता और सात्त्विकता से अपने संबंध को मजबूत कर सकते हैं।

अंत:करण का निरूपण करते हुए स्वामीजी ने मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार का एक नए दृष्टिकोण से विश्लेषण किया। उन्होंने समझाया कि किस प्रकार अंत:करण गुणों की प्रबलता के अनुसार विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार राजयोग के अनेक जटिल सिद्धान्तों को स्पष्ट, सटीक और व्यावहारिक ढंग से प्रस्तुत किया गया ताकि वे साधकों के दैनिक जीवन में प्रासंगिक और उपयोगी बन सकें।

स्वामीजी ने मन:प्रसाद अर्थात् प्रसन्नता के यम की चर्चा करते हुए कहा कि हर योग साधक की यात्रा मन:प्रसाद से शुरू होती है और परमानन्द की अवस्था में समाप्त होती है। साधक प्रसन्नता की डोर थामे यौगिक मार्ग पर तब तक आगे बढ़ता रहे जब तक आनन्द उसका सहज स्वभाव न बन जाए।

प्रतिभागियों के अनुभव

आश्रम में राजयोग प्रशिक्षण और सेवा के अनुभव से मेरी मन:स्थिति स्पष्ट और सकारात्मक हो गई है। यह प्रशिक्षण मेरी अपेक्षाओं जैसा बिल्कुल नहीं था, बल्कि उनसे कहीं बेहतर था। शरीर और मन, दोनों ऊर्जान्वित हो गए हैं और हृदय में उमंग व उत्साह है। मैं घर लौटकर अपने लिए एक साधनात्मक दिनचर्या तय करूँगी जिसके द्वारा राजयोग का अभ्यास नियमित ढंग से हो सके। साधना में अंतर्मौन का अभ्यास भी शामिल रहेगा ताकि अनुपयोगी और अवांछित प्रत्ययों का मन से निष्कासन हो सके। मेरे जीवन को सकारात्मकता की ओर मोड़ने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद!

– नेयोमी लोस्सिन, इस्रायल

इस प्रशिक्षण सत्र में हमारे सामने जो चुनौती रखी गई वह बड़ी स्पष्ट और सटीक थी—क्या हम अपने योग संबंधी पूर्वाग्रहों और कल्पनाओं की दुनिया में ही खोए रहना चाहते हैं या वास्तव में हठयोग को सिद्ध करके राजयोग की विधियों को गहराई से आत्मसात् करना चाहते हैं जिससे हमारे मन, स्वभाव, व्यवहार और दृष्टिकोण का एक सकारात्मक रूपान्तरण हो सके और हमारा जीवन आनन्द, संतोष, संतुलन और प्रेरणा के नए चरण में प्रवेश कर सके?

प्रशिक्षण के दौरान स्वामीजी ने राजयोग को एक निरंतर गतिशील प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया, जहाँ हम एक चरण से दूसरे चरण में सहजता से प्रवेश करते हैं। क्रमबद्ध तरीके से निर्देशित करते हुए उन्होंने विभिन्न राजयौगिक विधियों के परस्पर संबंध के प्रति हमें सजग बनाया। जो पहले किताबी ज्ञान तक सीमित था, वह अब एक जीवन्त और प्रेरक अनुभव बन गया है। मुझे अब स्पष्ट हो गया है कि हमारी आँखें चाहे खुली हों या बन्द, यौगिक अनुभव हर दिन, हर पल हमारे साथ रह सकता है।

—स्वामी योगज्योति, आयरलैण्ड

राजयोग प्रशिक्षण में आने से पहले मेरा योग का अनुभव और ज्ञान बहुत सीमित तथा बिखरा हुआ था, मानो एक जिगसॉ पज़ल के टुकड़ों की तरह। लेकिन इस प्रशिक्षण के बाद मुझे लगता है कि सभी टुकड़े अपने स्थान पर पहुँचकर योग की एक सुन्दर तस्वीर तैयार कर रहे हैं, जो मुझे आगे भी प्रेरित और निर्देशित करती रहेगी।

—दया, रोमेनिया

प्रत्याहार और धारणा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

राजयोग के अनुसार मानसिक एकाग्रता की शुरुआत प्रत्याहार से होती है। प्रत्याहार के संबंध में महर्षि पतंजलि यह सूत्र बतलाते हैं–

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारः इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। 2.54

यहाँ से योग का पाँचवाँ अंग प्रारंभ होता है। इस सूत्र के अनुसार प्रत्याहार का अर्थ होता है इन्द्रियानुभव के विषयों से मन को वापस खींच लेना। तब इन्द्रियाँ मन के अनुसार काम करती हैं, इसके विपरीत नहीं। गंध, स्वाद, दृष्टि, स्पर्श और श्रवण की क्षमतायें विषय-वस्तुओं से वापस लौटा ली जाती हैं। इन्द्रियाँ बाहरी विषयों के बदले मन के भीतर ही भ्रमण करने लगती हैं। इन्द्रियाँ भी मन के साथ अंतर्मुखी हो जाती हैं। वे मन का नकल करती हैं, अनुसरण करती हैं। यह प्रत्याहार है। और इसका परिणाम क्या है? अगले सूत्र में बतलाया गया है–

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्। 2.55

प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों का परम-निग्रह होता है। यही प्रत्याहार का लक्ष्य और उद्देश्य है। इन्द्रियाँ जिस वस्तु से जुड़ी हैं उससे उनको हटा लेना निग्रह है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को यही बात समझाते हुए कछुए का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि जैसे कछुआ संकट के समय अपने अंगों को अपने कवच के भीतर समेट लेता है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी इन्द्रियों को अपने-आप में समेट ले। इन्द्रियों के इस समेटने को ही उन्होंने प्रत्याहार कहा है।

सरल शब्दों में प्रत्याहार का यही तात्पर्य है कि आपकी इन्द्रियाँ जिन चीजों को ग्रहण करती हैं, उनसे उनको अलग कर देना। ध्यान की प्रारंभिक क्रियाओं में जब हम प्रवेश करते हैं तो सबसे पहले प्रत्याहार की ही शिक्षा दी जाती है–शरीर का ख्याल करो, शरीर के प्रति सजग हो जाओ, शरीर के तनाव को दूर कर दो। उसके बाद अपने मन को शरीर से खींचो और चेतना के एक बिन्दु पर केन्द्रित कर दो। वह बिन्दु ज्योति का स्वरूप हो सकता है या कोई अन्य प्रतीक हो सकता है। अपनी चेतना को चारों ओर से खींचकर उसी पर केन्द्रित करो। जब उसपर केन्द्रित होते हो तो इन्द्रियों से मन हट जायेगा। जब इन्द्रियों से मन हटेगा तब आपको ज्योति का स्वरूप स्पष्ट दिखलायी देगा। जब तक इन्द्रियों से मन जुड़ा हुआ है और द्वंद्व की स्थिति है, ज्योति का स्वरूप कभी दिखलायी नहीं देगा, मात्र कल्पना है। ये सब निर्देश जो दिए जाते हैं ये प्रत्याहार के ही निर्देश हैं। प्रत्याहार से ही ध्यान

की शुरुआत होती है। अगर यह नहीं करेंगे और आपसे बोलेंगे कि सीधा ध्यान या जप करो तो आप नहीं कर पाओगे। आजमाकर देख लो। अगर अपने आपको शांत करके समेटोगे तो उसके बाद जो कार्य करना चाहोगे वह संभव हो पायेगा।

प्रत्याहार को सिद्ध करने के बाद इन्द्रियों का परम निग्रह हो जाता है। मतलब इन्द्रियों पर नियंत्रण की क्षमता आ जाती है। अब हम इन्द्रियों को निर्देश दे सकते हैं कि तुम्हें ऐसा करना है। इन्द्रियाँ हमें विवश नहीं करेंगी। अभी तो इन्द्रियाँ कहती हैं कि तुम ऐसा करो। कोई अच्छी चीज दिखलाई देती है, फिर इन्द्रिय कहती है मन को कि देखो, कितनी सुन्दर चीज है, यह अपने पास होनी चाहिये, और मन में कामना प्रकट होगी कि मुझे यह चीज चाहिये। और फिर आप परेशान हो जाते हो कि मैं उस वस्तु को कैसे प्राप्त करूँ। यह परेशानी जो आपको हो रही है वह इन्द्रियों के कारण ही हो रही है।

यहाँ पर योग शास्त्र कहता है कि परिस्थिति को बदल दो। मन इन्द्रियों का अनुसरण नहीं करेगा, बल्कि इन्द्रियाँ मन का अनुसरण करेंगी। मतलब जो मन कहेगा वही काम इन्द्रियाँ करेंगी। आपकी मानसिक सजगता यह निर्णय लेगी कि आपके द्वारा वांछित वस्तु क्या आपके तत्काल काम के लिये आवश्यक है या नहीं, जीवन में प्रासंगिक है या नहीं। जैसे बाजार में हाथी को देखकर बच्चे बिलखते हैं न, 'मम्मी हाथी चाहिए!' वे हाथी को घर में ले आना चाहते हैं, लेकिन हाथी को रोज कितना खाना खिलाना पड़ता है, कोई सोचता है उसके बारे में? हाथी तो खरीदकर ले आओगे लेकिन उसके बाद रखोगे कहाँ? उतना बड़ा कमरा और उतना बड़ा दरवाजा है क्या? उसके खान-पान की व्यवस्था कर पाओगे? हाथी चाहिये—यह सोचना सरल है, कामना करना सरल है, लेकिन व्यवस्था करना संभव नहीं है। गाड़ी चाहना सरल है, लेकिन गाड़ी की देखभाल करना सरल नहीं है। अगर मर्सीडीज़ भी खरीद लोगे पर उसकी देखभाल नहीं करोगे तो छः महीने के बाद कंडम हो जायेगी, सीधी-सी बात है।

जब व्यक्ति विवेक से काम करता है तो फिर वासना के पीछे नहीं भागता। इन्द्रियाँ ही वासना को जन्म देती हैं। वे ही चाह और कामना को जन्म देती हैं, स्वार्थ को प्रबल बनाती हैं। जब प्रत्याहार सिद्ध हो जाए तब उस स्थिति में मनुष्य का पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह हो जाता है। वह अपने आप में शांत, स्थिर और संतुष्ट हो जाता है—

चाह गई चिंता मिटी मनुवा बेपरवाह।
जिसे कछु न चाहिये वही शाहंशाह॥

चाह अपने लिये कोई कामना है, इच्छा है, वासना है, स्वार्थ है। जब चाह है तो चिंता भी है—कैसे मोल लेकर, चोरी करके, छल-कपट करके, ईमानदारी से, किस तरीके से चाह पूरी की जाए। चाह के साथ चिंता है और जब चाह और चिंता

दोनों हैं तो मनुवा बेपरवाह नहीं हो सकता। लापरवाह भले हो जाए, बेपरवाह नहीं होगा। उसे तो हमेशा कुछ-न-कुछ चाहिये। लेकिन जो प्रत्याहार और इंद्रिय-निग्रह की स्थिति है वहाँ चाह नहीं, चिंता नहीं और फिर वहाँ मनुवा बेपरवाह हो जाता है, आदमी शाहंशाह हो जाता है। और जो शाहंशाह होता है वह फिर धारणा में प्रवेश करता है जो राजयोग का अगला चरण है। धारणा को महर्षि पतंजलि ने इस प्रकार परिभाषित किया है–

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। 3.1

अर्थात् चित्त को एक स्थान पर बांधकर रखना धारणा है। मन को एक बिंदु में टिका देना और उसे वहाँ से हिलने नहीं देना धारणा है। एक प्रकार से मानकर चलिये कि यह एकाग्रता का ही थोड़ा और व्यापक रूप है। प्रत्याहार में हम इंद्रियों को समेटने का, मन की चंचलता को शांत करने का और एकाग्रता विकसित करने का प्रयास करते हैं। जब प्रत्याहार सिद्ध हो जाता है तब फिर धारणा की स्थिति आती है जिसमें हम अपने मन को किसी एक बिंदु पर केंद्रित कर फिर उसको वहाँ पर स्थिर छोड़ सकते हैं। अगर हमलोग माला लेकर मंत्र जप करते हैं तो 15-20 दाने के बाद मन वहाँ से गायब हो जाता है, लेकिन धारणा में 15-20 के बाद मन गायब नहीं होता। अगर धारणा सिद्ध हो गई है तो पूरी माला उसी सजगता के साथ, उसी एकाग्रता के साथ हम पूरी कर सकेंगे क्योंकि वहाँ पर मन का विक्षेप, मन का डोलना समाप्त हो जाता है।

धारणा का एक उदाहरण देता हूँ। महाभारत में प्रसंग आता है जिसमें गुरु द्रोणाचार्य पेड़ पर मिट्टी की चिड़िया को रखकर अपने शिष्यों से कहते हैं कि इसकी आँख में बाण मारना है। एक-एक शिष्य को बुलाकर उससे पूछते हैं कि

तुम क्या देख रहे हो। कोई कहता है कि मैं पेड़ भी देख रहा हूँ, चिड़िया भी देख रहा हूँ, अपने स्वजनों को भी देख रहा हूँ। द्रोणाचार्य उसे कह देते हैं, अब तुम धनुष नीचे रखो और वापस जाओ। दूसरे को बुलाते हैं, वह भी वैसा ही जवाब देता है, 'मैं आसमान देख रहा हूँ, बादल देख रहा हूँ, आसमान में उड़ती चिड़िया को देख रहा हूँ और पेड़ पर मिट्टी की चिड़िया को भी देख रहा हूँ।' लेकिन जब अर्जुन की बारी आती है तो वह कहता है कि मुझे चिड़िया की आँख के अलावा और कुछ दिखलाई नहीं दे रहा है। यह धारणा की अवस्था है।

अर्जुन को भी सभी चीजें नजर आ रही हैं, लेकिन वह कह रहा है कि मैं केवल आँख को ही देख रहा हूँ। यहाँ पर क्या संकेत मिलता है? हर विद्यार्थी धनुष पर बाण चढ़ाकर विक्षेप का अनुभव करता था। वह विक्षेप था कि मैं सब चीजें देख रहा हूँ। अर्जुन नें उस विक्षेप को खत्म कर दिया। देख रहा है सब कुछ, लेकिन उसका मन केवल एक बिंदु पर केंद्रित है। उसके मन का डोलना समाप्त हो गया। वह दृश्य देख रहा है, ध्वनि सुन रहा है, त्वचा का स्पर्श वगैरह सब हो रहा है, लेकिन वहाँ से मन हट गया और केवल चिड़िया की आँख पर केंद्रित हो गया।

धारणा एक बहुत ही व्यक्तिगत अनुभव है जिसमें व्यक्ति कभी-कभी सब चीजों की उपेक्षा करके देश, काल और परिस्थिति को भी भूल सकता है। इसका उदाहरण अकबर के जीवन की एक घटना से मिलता है। एक बार वह जंगल में जाकर शिकार कर रहा था। शिकार करते समय नमाज़ का वक्त हो गया। वह जंगल में ही अपनी चादर बिछाकर बैठ गया और नमाज़ अदा करने लगा। उसी समय एक भील युवती मस्ती में कहीं से आयी और उसकी चादर पर पैर रखते हुए चली गयी। अकबर तो आग-बबूला हो गया। जब उसकी नमाज़ खत्म हुई तो सैनिकों को आदेश दिया कि उस लड़की को पकड़कर लाओ। सैनिक लड़की को पकड़कर ले आये तो अकबर पूछता है, 'क्या तुम अंधी हो? दिखता नहीं कि तुम कहाँ पर पैर रख रही हो?' लड़की भय से काँप रही थी, किसी तरह बोली, 'महाराज! मुझे तो कुछ ख्याल ही नहीं कि मैं क्या कर रही थी। मैं तो अपने विचारों की मस्ती में ही चली जा रही थी।' अकबर ने पूछा, 'कौन-सी मस्ती?' उसने कहा, 'प्रेम की मस्ती। मैं अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी, उसी के बारे में सोच रही थी। मुझे ख्याल ही नहीं था कि मैं कहाँ चल रही हूँ, कैसे चल रही हूँ। महाराज, आप भी तो अपने प्रेमी से ही मिल रहे थे न, फिर आपको सब चीजों का ख्याल कैसे था?'

इस दृष्टान्त में दिखलाई देता है कि जब मनुष्य प्रार्थना करता है या अपने मंत्र का जप करता है, उस समय भी बाहरी चीजों की सजगता रहती है। यह धारणा नहीं है, क्योंकि व्यक्ति ने अपने चित्त को एक स्थान में बाँधकर नहीं रखा है। लेकिन जो भील युवती थी, वह धारणा की अवस्था में थी। वह अपनी धुन में, अपने चिंतन में इतनी मग्न हो गयी थी कि उसकी सजगता पूर्णतया केन्द्रित हो गयी उसी चिंतन

में। कहाँ पर पैर पड़ रहे हैं, कौन मेरे सामने बैठा है, उतनी भी सजगता नहीं। वह स्थिति है धारणा की।

जब हम अपने आपको एकाग्र करने का प्रयास करते हैं तो एकाग्रता कुछ क्षणों के लिये आती है, फिर जाती है। कुछ समय के बाद हम फिर प्रयास करते हैं और एकाग्रता कुछ क्षणों के लिये आती है, कुछ क्षणों के लिये जाती है। यह प्रत्याहार है। जब इसी एकाग्रता की अवधि बढ़ जाए तो धारणा हो जाती है और जब यही एकाग्रता निरंतर हो जाए तो ध्यान है।

एकाग्रता से संबंधित एक और बिंदु है। जब इन्द्रियाँ चंचल होती हैं तो मस्तिष्क में रक्त का संचार अधिक होता है, पर जब इन्द्रियों को शांत करते हैं तो मस्तिष्क में रक्त का संचार धीरे-धीरे कम होता है और तन्द्रा की स्थिति आती है। जब हमने योगाभ्यास शुरू किया था तो एक बार हमने त्राटक भी किया। त्राटक करने के बाद लेट गये। कब नींद आयी पता ही नहीं चला। बाद में हमें आश्चर्य लगा कि ऐसे नींद कैसे आ गई। बहुत दिनों तक हमने प्रयोग किया। फिर एक महीने बाद हमने अपने गुरुजी से पूछा कि त्राटक में ऐसा-ऐसा अनुभव हो रहा है, क्या ऐसा होना चाहिये या नहीं? उन्होंने कहा, 'देखो, त्राटक एकाग्रता का अभ्यास है और जब तुम किसी एक बिन्दु पर अपनी दृष्टि को एकाग्र करते हो तो दृष्टि के एकाग्र होने से मन धीरे-धीरे स्थिर होता है। इससे मस्तिष्क में रक्त का संचार भी धीमा हो जाता है और उसके पश्चात् अंतर्मुखता की स्थिति आती है। जब अंतर्मुखता की स्थिति आए और उसे हम संभाल न सकें तो नींद आ जायेगी। यदि संभाल लिया और उस समय सजग रहे तो फिर वह ध्यान हो जाता है।'

–27 एवं 28 जुलाई 2016, पादुका दर्शन

धारणा में अध्यवसाय

अधीर व्यक्ति धारणा का अभ्यास नहीं कर सकता।
वह कुछ ही क्षणों के पश्चात् अपना आसन छोड़ कर उठ खड़ा होगा
और सप्ताह या माह के अन्दर ही अपना अभ्यास छोड़ देगा।
एकाग्रता के लिए गर्दभवत् अध्यवसाय की आवश्यकता होती है।
प्रारम्भ में अध्यवसाय अत्यन्त अरुचिकर
तथा क्लान्तिकर प्रतीत होता है,
क्योंकि इसमें मनस्-ऊर्मियों को ऊर्ध्वगामी बनाना होता है।
यह कुछ वैसा ही है जैसे गंगा के जल को आप
बदरीनारायण की ओर ले जायें।
परन्तु बाद में धारणा शान्ति और परमानन्द प्रदान करती है।
किसी मेडिकल छात्र के लिए
किसी घाव की मरहम-पट्टी करते समय
पीब साफ करना घृणित कार्य होता है।
परन्तु जब वह शल्य-चिकित्सक बन जाता है,
तब वह प्रसन्नता के साथ शल्य-चिकित्सा करता है।
एक डॉक्टर को एक रोग के उपचार का
पता लगाने के लिए सहस्त्रों बार प्रयोग करना पड़ा।
एक पक्षी ने अपनी छोटी चोंच से
समुद्र को खाली करने का प्रयत्न किया था।
उनकी तरह अध्यवसायी बनो!
केवल तभी योग में सफलता प्राप्त हो पायेगी।

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती

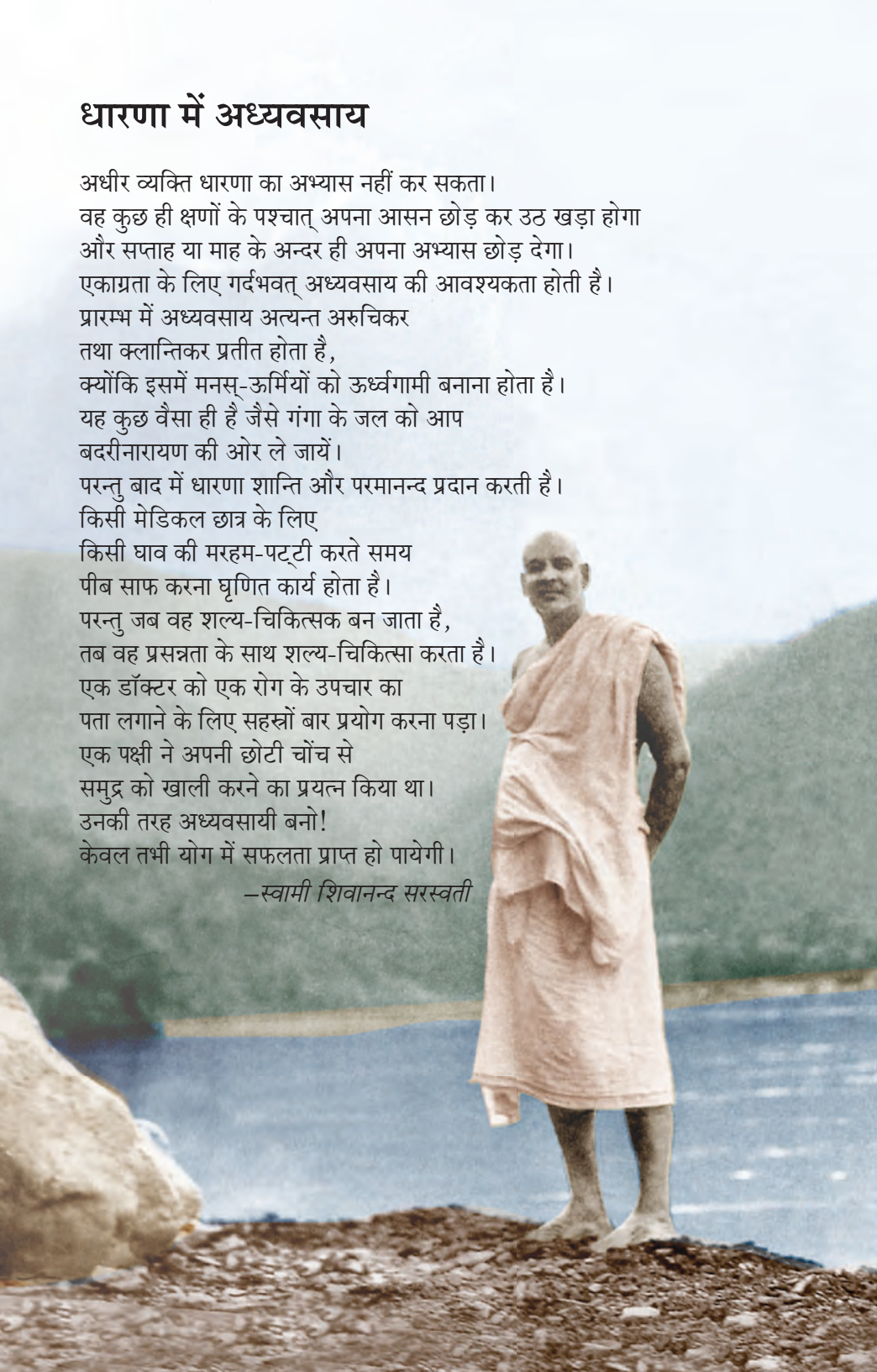

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

मुक्ति के चार सोपान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 318, ISBN: 978-81-85787-92-3

'मुक्ति के चार सोपान' में महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों के संस्कृत मूल पाठ के साथ उनके अनुवाद तथा विस्तृत व्याख्या का अद्‌भुत् समावेश है। व्यावहारिक ज्ञान से परिपूर्ण योग के इस सुविख्यात ग्रन्थ 'योग सूत्र' में जीवन को सही ढंग से जीने के सूत्र हैं। आधुनिक मानव इन सूत्रों के गूढ़ अर्थ को समझ पाये, इसके लिए स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने अभ्यास तथा व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर सूत्रों एवं राजयोग की गहन, सारगर्भित व्याख्या की है।

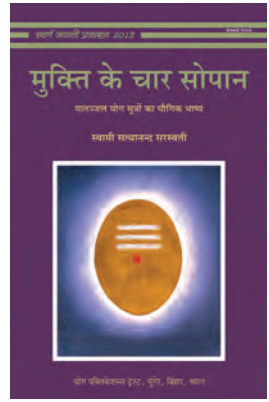

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या वेबसाइट

पाठकों को हर्षपूर्वक सूचित किया जाता है कि योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ अब वेबसाइट पर उपलब्ध हैं–

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2017

फरवरी 1	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 6-मई 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (हिन्दी)
फरवरी 12-18	योग कैप्सूल-श्वास सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
फरवरी 26-मार्च 4	योग कैप्सूल-पाचन सम्बन्धी (हिन्दी)
मार्च 19-25	योग कैप्सूल-गठिया सम्बन्धी (हिन्दी)
अप्रैल 9-19	योग कैप्सूल-पूर्ण स्वास्थ्य (हिन्दी)
अक्टूबर 1-30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण (अंग्रेजी)
अक्टूबर 2-जनवरी 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 1 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 2 एवं तत्त्व शुद्धि (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 1-षट्कर्म का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 2-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 1-जनवरी 30 2018	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (विदेशी प्रतिभागियों के लिए)
दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 1-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 2-प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।